ओ३म्

दुर्गा-विजय

प्रकाशक :
मनोहर विद्यालङ्कार
५२२, ईश्वर भवन,
खारी बावली, दिल्ली-११०००६

मनोहर विद्यालङ्कार--

१. दुर्गा-विजय
२. वेद और दुर्गा
[illegible]ेद-मन्त्र-संकलन

दुर्गा-विजय

प्रकाशक
मनोहर विद्यालङ्कार
५२२, ईश्वर भवन
खारी बावली, दिल्ली ११०००६

मनोहर विद्यालङ्कार--

१. दुर्गा-विजय
२. वेद और दुर्गा
३. वेद-मन्त्र-संकलन

सत्यभूषण योगी--

१. दुर्गेश शिव
२. बन्धुबान्धवाशंसा
३. वेद मन्त्रों का हिन्दी काव्यानुवाद

मुद्रक—विराट् प्रिन्टिंग एजेन्सी द्वारा **सैनी प्रिण्टर्स**, पहाड़ी धीरज, दिल्ली ।

वन्दिता-विवेक-परिणयः

वन्दितया विवेकस्य परिणयः शुभावहः।
श्यामसुन्दरपौत्रस्य मनोहर-सुतस्य वै ॥
आचार्यरामदेवस्य पौत्र्या शिवगुणोदयः ।
पुत्र्या श्रीशदयादीप्तः सत्यभूषणयोगिनः ॥
देयासुराशिषं देवा मोदन्तां सर्वबान्धवाः ।
वर्धेतां दम्पती नित्यं सर्वभूतहिते रतौ ॥

विवेक कुमार — पौत्र श्री ला० श्यामसुन्दर लाल
और — पुत्र श्री मनोहर विद्यालङ्कार (राधेश्याम)

वन्दिता मधुहासिनी — पौत्री श्री आचार्य रामदेव
का — पुत्री श्री सत्यभूषण योगी

शुभ विवाह
२४ जून, १९७४ को
सायंकाल संपन्न हुआ।

नव दम्पति तथा उनके माता पिता सभी बन्धु-बान्धवों से आशीर्वाद तथा शुभ कामनाओं की प्रार्थना करते हैं।

मंगलाचरण

मा विदन् परिपन्थिनो य आसीदन्ति दम्पती ।
सुगेभिर्दुर्गमतीतामप द्रान्त्वरातयः ॥

ऋ० १०.८५.३२

अनुकूल नारी नर मिलें, बनें दम्पति ये
एक एक मिल ग्यारह हैं, शुभ कामना
आके पथ रोकें परिपंथी इनका यहां जो
होवे न सफल उनकी मलीन योजना
दुर्गम ये पथ हों सुगम, नित्य आगे बढ़ें
लेके दिव्य भावना, सुभव्य नव कल्पना
छोटे दिल वाले वे अदानशील अरि उन्हें
इनकी सुधर्म-शक्ति राख ही देगी बना

दुर्गा विजय

दुर्गा पार्वती का नाम है। पार्वती शिव की पत्नी है। शिव के दो रूप हैं, कल्याण तथा संहार। वे कल्याण के लिये संहार करते है, तथा संहार द्वारा भी कल्याण करते हैं। संहार के समय उनका रूप रुद्र होता है। इस लिये वे रुद्र हैं।

प्रत्येक देवता की विभूति (शक्ति) पत्नी रूप में मानी गई है है। रुद्र की शक्ति दुर्गा है। दुष्टों का दमन, रोगों का विनाश, अज्ञान तथा दरिद्रय को दूर करने के लिये रुद्र दुर्गा की सहायता लेते हैं। अथवा दुर्गा को निर्देश देते हैं कि वह उनका कार्य सम्पन्न करे। इसलिये दुष्ट दमन, तथा विजय की देवी दुर्गा है। जब जब दुष्टोंन्पापियों का नाश होता है, रोग, अज्ञान तथा दारिद्रय का विनाश होता है, तब तब दुर्गा विजय होती है।

दुर्गा विजय का ही दूसरा रूप या पर्याय दुष्ट संहार है। दुष्ट संहार कार्य से रुद्र प्रसन्न होते हैं, अपनी पत्नी को प्रणय से देखते हैं, उसके कार्य की प्रशंसा करते हैं। इस प्रेम और प्रशंसा से, सब दुष्टों की संहारकारिणी सर्व विजया दुर्गा स्वयं अनायास ही विजित हो जाती है। यही दूसरा दुर्गा विजय है।

इस प्रकार से दुर्गा विजय ही, शिव शक्ति परिणय है। मनुष्य समाज में परिणय के लिये शिव शक्ति युगल ही आदर्श है। मनुष्य पत्नी को अपनी शक्ति के रूप में स्वीकार करता है। उसके द्वारा सब तरह की बुराइयों से बचता है। गृहस्थको सुचारू रूप से चलाने के लिये नये नये उत्पादन करता है। प्रयत्नशील बनता है। मनुष्य को शिव की तरह से निःसंग, 'अकिंचन' किन्तु दुष्टों के लिये रुद्र रूप धारण करना है। अज्ञानियों को उपदेश, रोगियों को औषध, दरिद्रों को धन देना है। और पत्नी को पति के इन कार्यों में सहायक बनना है। उसे निराशा के समय आशा बंधानी है। कमी और बिमारी में उत्साहित करना है। उसके लिये सदा प्रेरिका बने रहना है।

इसी प्रकार दुर्गाविजय होती है। शिव शक्ति परिणय सफल होता है। दुर्गा विजय में शिव और शक्ति, पति शौर पत्नी दोनों की ही विजय हो।

कोई किसी के अधीन नहीं। दोनों एक दूसरे के पूरक, प्रेरक तथा पथप्रदर्शक हैं।

प्रभु से कामना है कि प्रत्येक गृहस्थ के घर में सच्ची दुर्गा विजय हो।

वेद और दुर्गा

—मनोहर विद्यालङ्कार

त्रिदेव

भारतीय संस्कृति में त्रिदेव का बड़ा महत्त्वपूर्ण स्थान है। सारे साहित्य में ब्रह्मा, विष्णु और शिव का विस्तार है। बल्कि ये ही सारे जगत् के आधार, कारण, प्रेरक और संहारक माने गये हैं।

इन त्रिदेव के सम्बन्ध में दो विचार पद्धतियां हैं। एक के अनुसार ये ३ पृथक् २ देव हैं अथवा शक्तियां हैं। इन तीनों का उत्पादन, धारण तथा संहार रूप में पृथक् २ कार्य है। दूसरी के अनुसार एक ही अदृष्ट शक्ति जगत् का नियन्त्रण करती है। और उसी के भिन्न २ कार्यों के कारण उसकी ३ रूपों में कल्पना करके उन्हें तीन नाम दे दिये गए हैं।

देवता की कल्पना

प्राचीन साहित्य में पहिले तो एक कार्य शक्ति को देव रूप में कल्पित किया गया। और फिर उस देव के उस सामर्थ्य को शक्ति या पत्नी का रूप दे दिया गया है। उदाहरण के रूप में इस जगत् को धारण करने के कार्य को होते हुए देख कर इसे करने वाले व्यक्ति की कल्पना की गई। और उसका नाम विष्णु रख दिया। और उसके बाद उस धारण रूप कार्य को उसकी शक्ति या पत्नी का रूप दे दिया। इस प्रकार जगत् का धारण जो स्वयं हो रहा है, उसे करने वाला विष्णु मान लिया गया। और उसमें सहायक उसकी पत्नी लक्ष्मी हो गई।

इस सब का मूल यह है कि जब भी कोई काम होता हुआ दीखता है तो उसका कर्ता अवश्य होता है। और कर्ता यदि मनुष्य है तो उसमें उसकी

पत्नी सहायिका या प्रेरिका दिखाई देती है। इस लिये मनुष्य की कल्पना ने जगत् या सृष्टि के कार्यों को देख कर उसके कर्ता रूप में भी विशिष्ट मनुष्यों (देवों) की कल्पना कर ली। और फिर उन देवों की प्रेरिका शक्ति के रूप में उनकी पत्नियों की कल्पना कर ली। वास्तव में यह सब है कल्पना मात्र।

शिव

इस जगत् के मूल कारण प्रकृति में सत्त्व, रजस् या तमस् तीन गुण माने हैं। और इन तीनों के प्रतिनिधि, प्रेरक या नियन्ता विष्णु, ब्रह्मा तथा शिव तीन देवों की कल्पना की है। तमस् के नियन्ता शिव को संहार का देवता माना है। किन्तु उसका नाम शिव रक्खा है। वास्तव में शिव या रुद्र जगत् के कल्याण के लिये ही प्रकृति का संहार करते हैं।

दुनिया में भी जब कोई मनुष्य सज्जनों का कल्याण करना चाहता है, उन्हें शुभ कर्मों के फलस्वरूप कुछ उपहार या इनाम देना चाहता है, सुख पहुंचाना चाहता है तो उसे दुष्टों का दमन करना पड़ता है, पापियों को दण्ड देना पड़ता है। शरीर को सुखी रखने के लिये इसमें उत्पन्न होने वाले कीटाणुओं का संहार या नाश आवश्यक है।

इसलिए महादेव शिव जहां एक ओर सज्जनों का कल्याण करते हैं, वहां दुष्टों का भी वे ही संहार करते हैं। जहां पापी प्रवृत्तियों को नष्ट करके परास्त करते हैं, वहां पुण्य प्रवृत्तियों को विकसित करके विजय प्राप्त कराते हैं। इन प्रत्यक्ष में विरोधी दीखने वाली शक्तियों के कारण उनकी पत्नी के भी विरोधी भावनाओं को प्रदर्शित करने वाले भिन्न २ तथा विरोधी नाम रख दिये गये हैं।

दुर्गा

महादेव की पत्नी का नाम उमा या पार्वती है। किन्तु इनके संहार कार्य को दर्शाने के लिये उसका नाम रुद्राणी, काली, चण्डिका और दुर्गा आदि रख दिया गया है। और इनके कल्याण कार्य को दर्शाने के लिये उसी के नाम

आर्या, भवानी, अम्बिका, ईश्वरी, मृडानी तथा सर्वमंगला रख दिये गये हैं। और वह असुरों का संहार करके सदा देवों को विजय दिलाते रहते हैं, इस लिये उनकी पत्नी का नाम विजया रखा गया है।

कल्याण और संहार दोनों में समन्वय करना बड़ा दुष्कर कर्म है। दुष्टों पर दमन करके विजय प्राप्त करना बड़ा दुर्गम है। इन दोनों क्रियाओं को करने वाले या दोनों शक्तियों को धारण करने वाले व्यक्ति में अगम्य या दुर्गम्य धैर्य होना चाहिये। इन दोनों विरोधी शक्तियों में तालमेल बनाए रखना सांप के खिलाने के तुल्य है। इसीलिये महादेव के गले में सांप दिखाए गए हैं, और महादेव की पत्नी का नाम दुर्गा रखा गया है, जो संहारशक्ति की स्वामिनी है।

दुर्दमनीय सामर्थ्य प्राप्त किये विना दुष्ट संहार संभव नहीं। और दुष्ट दमन किये बिना विजय संभव नहीं। इसलिये विजय के देव भी पुराणों के अनुसार महादेव ही माने जाते हैं।

वेद और दुर्गा

भारतीय संस्कृति का आधार भूत ग्रन्थ वेद है। भारतीय संस्कृति में प्राप्त या प्रचलित प्रत्येक कल्पना का मूल वेद को माना जाता है। पुराणों में विस्तृत कल्पनाओं तथा कथाओं का बीज भी वेदों में से ही प्राप्त किया गया है और फिर वह पल्लवित तथा पुष्पित होकर पुराणों में शाखा प्रशाखाओं से युक्त वृक्ष का रूप धारण कर लेता है।

इसी संदर्भ में शक्ति और विजय की देवी दुर्गा या विजय का मूल वेद में खोजने का प्रयत्न करते हुए कुछ निम्न सूत्र प्राप्त होते हैं।

जीवन का लक्ष्य विजय

मनुष्य जीवन का लक्ष्य है, सब विघ्न बाधाओं पर विजय प्राप्त करते हुए, आगे और आगे बढ़ना। किन्तु विघ्न बाधाओं अथवा विघ्न बाधा उत्पन्न करने वाले दुष्टों को नष्ट करने के लिए अपने में सामर्थ्य होना आवश्यक है। इस सामर्थ्य या वल को प्राप्त किये बिना मनुष्य न विघ्न

बाधाओं को दूर कर सकता है, न दुष्टों पर विजय प्राप्त कर सकता है, और न ही आगे बढ़ सकता है।

इन्द्र

वेदों में विजय का सम्बन्ध इन्द्र से है। निरुक्त में कहा है 'या का च बल-कृतिः, इन्द्र कर्मैव तत्', कि बल के सब कार्यों का सम्बन्ध इन्द्र से है। बल के साथ, बल के द्वारा अथवा बलपूर्वक कार्य करने से ही सफलता मिलती है। सफलता का ही पर्याय विजय है। इसलिये विजय का देवता इन्द्र है।

विजय का अर्थ है किसी का दमन या पराजय। दमन या पराजय से हिंसा उत्पन्न होती है। पराजित व्यक्ति दुःखी होता है, अपने को हिंसित अनुभव करता है। इस प्रकार स्पष्ट है कि प्रत्येक वस्तु या क्रिया के दो पार्श्व हैं। एक का कल्याण तो दूसरे का संहार, एक की विजय तो दूसरे की पराजय, एक आगे बढ़ेगा तो दूसरे पीछे रह जायेंगे। ज्ञानी बनना है तो अज्ञान को नष्ट करना होगा। प्रकाश प्राप्त करना है तो अन्धकार को दूर करना होगा।

महेन्द्र

इस प्रकार देखा कि विजय, नाश या संहार के बिना संभव नहीं। इस लिये शत्रुनाश पापनाश, दोषनाश या रोगनाश के लिए इन्द्र की शरण आवश्यक है। यदि ये शत्रु या दोष बहुत प्रबल हैं तो इन्द्र के बजाय हमें अपना सहायक या सेनानी महेन्द्र या महादेव को बनाना होगा। हमें महादेव की शरण में जाना होगा। एक के कल्याण के लिये दूसरे का दमन तो अवश्यं भावी है। किन्तु यदि यह दमन या नाश परार्थ (शिव) के लिये है तो महादेव कार्य है; और यदि यह दमन या नाश स्वार्थ के लिये है। तो यह दिव्य न होकर अशिव (दैत्य) कार्य होगा। कर्ता को अमृत या अमर्त्य न बनाकर उसे शीघ्र मृत्यु पाश में बांध देगा।

इस प्रकार देखा कि मन की एक तरंग, विजय को पराजय में, अमरता को मृत्यु में बदल देती है। इस मन को जो अजिर, जविष्ठ है अपने वश में रखना दुर्ग को जीतने के तुल्य है। जो मन को जीत कर महादेव बन गया, दुर्गा शक्ति उसकी अनुगामिनी पत्नी, सहधर्मिणी बन ही जाती है।

वेद में दुर्गा का मूल

वेदों में दुर्गा शब्द ५-७ बार आया है किन्तु वह कभी भी किसी स्त्री का वाचक होकर नहीं आया। दुर्गाणि के स्थान में प्रयुक्त हुआ है। अथवा **दुर्गे** शब्द सम्बोधन न होकर सप्तमी एक वचन के रूप में प्रयुक्त हुआ है।

इसलिये निःसंकोच होकर कहा जा सकता है कि जिन अर्थों में दुर्गा (देवी या शक्ति) शब्द पुराणों में प्रयुक्त है, उन अर्थों में वेद में कहीं प्रयुक्त नहीं हुआ। किन्तु यह शब्द जब और जहां प्रयुक्त हुआ है, वहां शत्रु नाश का जिक्र अवश्य है, अथवा दुर्गम स्थान या दुर्गम अवस्था को सुगम करने की प्रार्थना की गई है। इस लिए यह कहा जा सकता है कि दुर्गा शब्द के साथ जो वातावरण वेद में जुड़ा हुआ है, उस वातावरण और उस भावना को लेकर कल्पना द्वारा उसका खूब विस्तार कर के पुराणों में उसे बिल्कुल भिन्न प्रतीत होने वाले कथानक का रूप दे दिया गया है।

इसी प्रकार दुर्गा सप्तशती के निर्माण का मूल ऋग्वेद के वागाम्भृणी सूक्त को माना जाता है, और दुर्गा सप्तशती के प्रारम्भ में उसे जरूर दिया जाता है। वहां देवी शब्द से दुर्गा का ग्रहण करके स्तोत्र की रचना कर दी गई है। इसी स्तोत्र ग्रन्थ ने दुर्गा को शक्ति का प्रतीक स्थिर कर दिया है।

उधर त्रिदेव में शिव, रुद्र या महादेव संहार व विजय के कर्त्ता व प्रेरक हैं। इसलिये दुर्गा या विजया इनकी पत्नी के रूप में कल्पित हो गई।

वेदों में एक ही शक्ति

वेदों में इन्द्र-महेन्द्र-महादेव और रुद्र में भेद करना या इनको पृथक्-पृथक् मानना संभव नहीं है।

निरुक्त के अनुसार रुद्र का अर्थ है स्तोता। स्तोता की शक्ति है वाणी। गौरी तथा शची शब्द वाणी के पर्यायों में पढ़े गए हैं। इसलिये स्तोता की शक्ति (शची) हुई। इसी को आलंकारिक भाषा में कहेंगे कि वेद में रुद्र की पत्नी शची है, किन्तु पुराणों में शची केवल इन्द्र की पत्नी इन्द्राणी का पर्याय है। प्रतीत यह होता है कि वेद में जो इन्द्र-महेन्द्र-महादेव और रुद्र एक ही

शक्ति के कार्य भेद से भिन्न-भिन्न नाम प्रतीत हो रहे थे, वे पुराणों में जाकर भिन्न-भिन्न देव बन गए। वेद के अनुसार वह इन्द्र शक्ति कितनी अद्भुत है, इसका निदर्शन नीचे किया जाता है।

वह इन्द्र कैसा है ?

वह इन्द्र सर्वज्ञ है, सब कुछ देखता है और सब सुनता है। उसकी कोई बराबरी नहीं कर सकता, उसकी इच्छा को कोई काट नहीं सकता।[1]

हितकर तथा रमणीय दण्ड को धारण करने वाला इन्द्र अपने संकल्प द्वारा जो करना चाहता है, इस जगत् में वही होता है।[2]

वह अकेला ही सब बाधाओं, सब दुष्टों को नष्ट कर देता है। अपनी स्तुति करने वाले भक्तों का सदा कल्याण करता है। मननशील व्यक्तियों की सखा की तरह से देखभाल करता है।[3]

इन्द्र क्या करता है ?

यह सब जानते हैं कि आप जिनका पक्ष लेते हैं, वे अवश्य विजयी होते हैं। आप जिसे दृढ़ बनाते हैं, वही दृढ़ बनता है। आपकी जो सच्चे मन से कामना करता है, आप भी उसी की कामना करते हैं।[4] अगर आप अपने भक्त की पुकार सुन लें तो सहायता के लिये अवश्य आते हैं, उससे कभी दूर नहीं रहते।[5] इसलिये हमारी यही कामना है कि हम तेरी सहायसा से अपने पर आक्रमण करने वाले वाह्य तथा आभ्यान्तर सब शत्रुओं को सहन द्वारा नष्ट करने में समर्थ हो सकें।[6]

इन्द्र को क्यों बुलाते हैं ?

हम आपको जानते हैं। इसलिये आपको बुलाते हैं। आपसे प्रार्थना करते हैं कि तू हमारी कामनाओं को पूरा कर। हमें ऐसी शक्ति दे कि हम ऋत के मार्ग पर चल सकें। तू हमारे से द्वेष करने वाले दुष्टों को हमारी हिंसा करने

---

१. ऋ ८-७८-५; २. ऋ १-७-२; ऋ ८-६६-४; ऋ ८-६१-४; ३. ऋ ८-१५-१०; ऋ ८-१६-११; ऋ ८-१७-१४;

४. ऋ ८-१६-५; ऋ ८-४५-६; [५. ऋ ८-३३-६; ६. ऋ १-८-४;

वाली भावनाओं को नष्ट कर। हमारी आगे पीछे सब तरफ से रक्षा कर, और हम जिससे भय रखते हो, उससे निर्भय कर। हमसे सब दुष्ट भावनाओं को दूर करके सब प्रकार से वृद्धि करने वाली अपनी रक्षाओं से हमें शान्ति पहुंचा, हमें अग्रसर कर।*

इस प्रकार वेद में देव वाची सारे शब्द एक ही शक्ति की ओर निर्देश करते हैं। उस शक्ति के भिन्न-भिन्न कार्यों को अपने सन्मुख रखकर उसकी भिन्न नामों से प्रार्थना तथा स्तुति की गई है। इन देवताओं की भिन्न-भिन्न शक्तियों की भिन्न-भिन्न देवियों के रूप में या उनकी पत्नियों के रूप में कल्पना की एई है।

वेद में इन देवों को इतना मिला जुलाकर वर्णन किया गया है कि उनमें भेद करना कठिन है। वेद का सहस्राक्ष शब्द अग्नि, इन्द्र, विष्णु और रुद्र के लिये प्रयुक्त हुआ है।[1] किन्तु पुराणों में जाकर इसका सम्बन्ध केवल इन्द्र से रह गया है। और फिर सहस्राक्ष बदल कर सहस्रभग बन गया है। सोम और वरुण को सहस्रचक्षस् कहा है, जो सहस्राक्ष का पर्याय है।

इसी प्रकार वृत्र वध और विजय कार्य इन्द्र के हैं। किन्तु देव जब किसी अप्रतीकार्य आपत्ति में फंस जाते हैं तो वे रुद्र-शिव-(महादेव) की शरण में जाते हैं।

रुद्र

वेद में यद्यपि रुद्र देवता के मन्त्र बहुत कम हैं फिर भी वह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण सच्चे अर्थों में महादेव माना गया है। वही इस सारे विश्व का कर्ता, व सम्पूर्ण भुवन का पालक है। और उससे ओजस्वी कोई नहीं है।[2]

वह सूक्ष्मतम पराशक्ति ही अपने भिन्न कार्यों के कारण अर्यमा, वरुण, सूर्य, महायम, प्रजापति और विष्णु का रूप धारण करती रहती है। इस

---

* ऋ ८-६१-१६; ऋ ८-६४-६; ऋ ८-१२-३; ऋ ८-६१-१३;

१. ऋ १-७६-१२; ऋ० ६२६०-१; ऋ १०-६०-१; ऋ ७-३४-१०; ऋ १०-१६१-३; २. अ० ७-६२-१; ऋ ६-४६-१०; ऋ २-३३-१०; ३. अथर्व १३-४; अथर्व० १७-१-१८

पराशक्ति को ही रुद्र समझा जा सकता है। सारे देव इसी में आकर एकाकार होकर विराजते हैं। ये सारे देवता वास्तव में तो एक ही हैं।

उपसंहार

वेदों में एक ही शक्ति के नाना कार्य हैं। एक ही देव के अनेक रूप हैं। वे ही काल के प्रवाह में चलते चलते पुराणों में आकर अनेक देवों का रूप धारण कर लेते हैं; और एक ही शक्ति अनेक शक्तियों का रूप धारण कर लेती हैं। ये नाना शक्तियां देवियां बन जाती हैं। देवी या स्त्री या शक्ति को अपने निवास के लिये कोई आधार चाहिये। ये स्वतन्त्र, एकाकी रहने में संकोच अनुभव करती हैं। इनको विकसित होने के लिए, अपना सर्जन प्रदर्शित करने के लिये दूसरे का सहारा अपेक्षित है। इसलिये इन शक्तियों ने पुराणों में देवों की पत्नियों का रूप धर लिया।

ये इन्द्राणी, रुद्राणी, अग्नायी, वरुणानी, बन गईं। और आगे आगे बढ़ते बढ़ते सरस्वती, लक्ष्मी, दुर्गा बन गईं। पहिले एक से अनेक की ओर प्रसार हुआ। फिर प्रतिक्रिया चालू हुई। और दुर्गास्तोत्र में आकर उन अनेक शक्तियों को एक ही में लाकर फिर संकोच कर दिया।

वह ऋग्वेद की आत्मा (१०-१२५) अथवा अथर्ववेद की सर्वरूपा सर्वात्मिका सर्वदेवमयी राष्ट्री देवी (४-३०) कहती है—मैं ही रुद्र, वसु और आदित्यों के साथ विचरण करती हूं। ये जगत् के त्रिक मेरी शक्ति के बिना कुछ भी नहीं कर सकते। मित्रावरुणौ, इन्द्राग्नी और अश्विनौ का मैं ही धारण करती हूं। जगत् के सब द्वन्द्वों का मूल मैं हूं। मेरी ही कृपा से कोई ज्ञानी, ऋषि, ब्रह्मा बनता है। और कोई दुष्टों का संहारक रुद्र बनता है। मैं ही समुद्र को घर बनाकर अन्तःपुर वासिनी बनी हुई हूं।

इन बड़े देवों का जब अपना कुछ सामर्थ्य नहीं, तो मनुष्य की क्या शक्ति है? लेकिन वह अपने सामर्थ्य के मद में किसी को कुछ समझता ही नहीं। उसे मैं दिखाई नहीं देती। वह नास्तिक बनकर मेरी उपेक्षा किये रहता है। उसे पता नहीं कि इस ब्रह्माण्ड का प्रत्येक प्राणी मेरी ही कृपा से अपना भोजन जुटा पाता है।

मेरी महिमा अपरंपार है। इस द्यावापृथिवी में वह समा नहीं सकती। जो जितनी बड़ी कल्पना कर सकता है, मैं उसके लिये उतनी ही बड़ी बन जाती हूं।

दुर्गेश शिव

निराकार रुद्र हुआ साकार कण कण में
ऋषि बन आंखें खोलो, जहां चाहे देख लो
चन्द्र भाल पर घनानन्द का अमृत है
प्रतिक्षण आध्यात्मिक सोम रस झरता
गङ्गाधारा दोष-मल-नाशिनी पयस्विनी
तृतीय लोचन ज्ञान त्रिलोचन रुद्र का
कण्ठ में है सर्प, वह विष दुष्टों के लिए
देह में विभूति शुभ्र, पूर्ण है पवित्रता
वाहन है नन्दी, ईश आनन्द में मग्न है
मानव के शुभ्र शान्त मस्तिष्क-हिमाद्रि में
जीव-पार्वती के संग ईश का विलास है
वीर कर्मरता जीव दुर्गा सिंहवाहिनी
जीव शक्ति-शचीपति इन्द्र, सब इन्द्रियां
मरुतों का गण, मन हो गणेश नर का
मूषक के वाहन पै आरूढ़ गणेश हो
भेद डाले बड़े बड़े पाषाणों की राशियां
विघ्न-बाधा-दलन में नित्य निरत रहे
दूरंगम, ज्योतियों में श्रेष्ठ ज्योति मन है
इसमें ही प्रतिष्ठित ऋक्, यजुः, साम हैं
भूत, वर्तमान, भावी सब्र इसे ज्ञात हैं
मन आखु-शक्ति ले के पर्वतों को खोद दे
मूषक को कहे ले आ चुराके तू संपदा
जिसे चुरा दबा बैठीं आसुरी वे शक्तियां
पुत्र है गणेश मन मानवात्मा-दुर्गा का
देवी दुर्गा की हो जय असुरों से रण में
दुर्जन-असुर संगठन - दुर्ग बनाते
बैठीं दुष्ट वृत्तियां अंदर-दुर्ग बना के
देवी आत्मा-दुर्गा तोड़ देगी दुर्ग रण में
कब, जब तप कर ईश को बुलाएगी
दुर्गा ईश परिणय-बन्धन में बंधेंगे
तपःक्रीत **विवेक** - लोचन-त्रिलोचन है
आत्मा-दुर्गा क्षण क्षण विजयिनी **वन्दिता**

वेद का विजय-गीत

आशुः शिशानो वृषभो न भीमो घनाघनः क्षोभणश्चर्षणीनाम्
संक्रन्दनोऽनिमिष एकवीरः शतं सेना अजयत् साकमिन्द्रः ॥

ऋ. १०.१०३.१
साम० उ० २२.१.१ (१८४९)

इन्द्र आत्मा, इन्द्र प्रभु, राष्ट्र-सेनापति इन्द्र
इन्द्र शीघ्रकारी तीव्रमति बलवान् है
भीषण वृषभ जैसे इसका उत्साह उग्र
इसका प्रहार घोर, विश्व कम्पमान है
चीखें इसे देख शत्रु, पलकें न झपती हैं
अद्वितीय वीर, जग में अनुपमान है
इसके विरुद्ध चढ़ आएं सेनाएं सहस्रों
कर सब को विजित स्थित महादान है

(२)

संक्रन्दनेनानिमिषेण जिष्णुना युत्कारेण दुश्च्यवनेन धृष्णुना ।
तदिन्द्रेण जयत तत्सहध्वं युधो नर इषुहस्तेन वृष्णा ॥

ऋ० १०.१०३.२
साम० उ० २२.१.२ (१८५०)

इन्द्र आत्मा, इन्द्र प्रभु, राष्ट्र-सेनापति इन्द्र
नरो, तुम इन्द्र-संग करो रण को प्रयाण
देख इसे शत्रु चीख मार कांपते हों दीन
झपती ने पलकें हैं, जिष्णु यह युध्यमान
डिगता कभी नहीं है, शत्रु-धर्षण-समर्थ
महाशक्तिशाली, हस्त में सजे हैं तीक्ष्ण बाण
नरो, बनो इन्द्रसखा कुचल दो शत्रुओं को
वसुधा उमग उठे, तारे गाएं जय-गान

१. प्रथम १३ मन्त्र चारों वेदों में हैं ।

स इषुहस्तैः स निषङ्गिभिर्वशी संस्रष्टा स युध इन्द्रो गणेन ।
संसृष्टजित् सोमपा बाहुशर्ध्युग्रधन्वा प्रतिहिताभिरस्ता ।।

ऋ० १०.१०३.३
साम० उ० २२.१.३ (१८५१)

इन्द्र आत्मा, इन्द्र प्रभु, इन्द्र राष्ट्र—सेनापति
वशी, योद्धा, इन्द्र; साथ इसके हैं मरुद्गण
सैनिक मरुत् बाण निषङ्ग से सज्जित हैं
शत्रुओं को दे चुनौती करता है आक्रमण
सोमपानलीन, बाहुबली उग्रधन्वा इन्द्र
तान तान बाण मारे करे शत्रु-विदलन
अंदर के बाहर के शत्रुओं से लड़ो नर
आए वीर योद्धा बन, जीवन है रणाङ्गण

(४)

बृहस्पते परि दीया रथेन रक्षोहामित्राँ अपबाधमानः ।
प्रभञ्जन्त्सेना प्रमृणो युधा जयन्नस्माकमेध्यविता रथानाम् ।

ऋ० १०.१०३.४
साम० उ० २२.२.१ (१८५२)

इन्द्र, तू बृहस्पति है, स्वामी सबसे बड़ा है
तीव्र बुद्धि, ज्ञान, शक्ति का सदा निधान है
आ तू इन्द्र, रथ पर, कर पापियों का नाश
शत्रुओं का रोक पथ, जय जय गान है
छिन्न भिन्न कर शत्रु-सेनाए संग्राम-मध्य
बजें विजय के वाद्य; इन्द्र तू महान् है
पथ पर बढ़ें हम लेकर विजय-रथ
रक्षा कर, जय हेतु करते प्रयाण हैं

(५)

बलविज्ञायः स्थविरः प्रवीरः सहस्वान् वाजी सहमान उग्रः ।
अभिवीरो अभिसत्वा सहोजा जैत्रमिन्द्र रथमा तिष्ठ गोवित् ।।

ऋ० १०.१०३.५
साम० उ० २२.२.२ (१८५३)

बल में प्रसिद्ध इन्द्र दृढ़ उग्र महावीर
शक्तिशाली सर्वजेता; शत्रु पै झपटता
अंदर औ' बाहर के सभी शत्रुओं को दले
सभी प्राणियों पै उसका आदेश चलता
शक्ति का है पुत्र इन्द्र, ज्ञान-रश्मि-धन-स्वामी
ऋषि योगी उसके स्वरूप को समझता
आ तू इन्द्र, रथ पर बैठ; यह जय-रथ
जिस ओर बढ़ता है, शत्रु जय करता

(६)

गोत्रभिदं गोविदं वज्रबाहुं जयन्तमज्म प्रमृणन्तमोजसा ।
इमं सजाता अनु वीरयध्वमिन्द्रं सखायो अनु संरभध्वम् ।।

ऋ० १०-१०३-६
साम० उ० २२-२-३ (१८५४)

साथियो, बनाओ संघ, पाप का दलन करो
इन्द्र सदा सज्जनों के साथ साथ चलता
ज्ञान-रश्मि-आच्छादक को करता छिन्नभिन्न
ज्ञान के प्रकाश, से है भुवन को भरता
वज्रबाहु विजयी है, तेज ओज से भरा है
दिव्य इन्द्र शत्रुओं को पकड़ मसलता
उठो मिल इन्द्र संग करो महावीर-कर्म
सज्जनो, बनाओ संघ, तभी है सफलता

(७)

अभि गोत्राणि सहसा गाहमानोऽदयो वीरः शतमन्युरिन्द्रः ।
दुश्च्यवनः पृतनाषाळयुध्योऽस्माकं सेना अवतु प्र युत्सु ॥

ऋ० १०-१०३-७
साम० उ० २२-३-४ (१८५५)

ज्ञान-रश्मि-आच्छादक को स्वशक्ति से अजेय
इन्द्र छिन्न भिन्न कर चलता है बढ़ता
पाप पर उसके हैं सौ सौ क्रोध बरसते
निर्भय हो वीर इन्द्र उस पै झपटता
डिगता न वह, शत्रु-सेना को गिराता मार
उसके समक्ष कोई कर न युद्ध सकता
सज्जनो, बनाओ संघ, करो पाप से संघर्ष
रखो श्रद्धा, इन्द्र रक्षा सत्य की है करता

(८)

इन्द्र आसां नेता बृहस्पतिर्दक्षिणा यज्ञः पुर एतु सोमः ।
देवसेनानामभिभञ्जतीनां जयन्तीनां मरुतो यन्त्वग्रम् ॥

ऋ० १०-१०३-८
साम० उ० २२-३-२ (१८५६)

दिव्य भाव-युक्त नर अपना बनाएं संघ
इन्द्र बन के सेनानी स्वयं वह आएगा
ज्ञान को बढ़ाए बने बृहस्पति महामति
करे यज्ञ, दक्षिणा में सोम लहराएगा
बढ़े देवसेना, पापियों को छिन्नभिन्न करे
विजय-निनाद उठ नभ को हिलाएगा
आगे आगे मरुतों का दल चले युद्ध-रत
जिएगा वही जो मृत्यु को गले लगाएगा

(९)

इन्द्रस्य वृष्णो वरुणस्य राज्ञ आदित्यानां मरुतां शर्ध उग्रम् ।
महामनसां भुवनच्यवानां घोषो देवानां जयतामुदस्थात् ॥

ऋ० १०.१०३.९
साम० उ० २२.३.३ (१८५७)

शक्तिशाली इन्द्र बढ़े शक्ति-रस बरसाता
राजा वरुण बढ़े ले प्रेम-न्याय सुमहान्
मुक्ति-पुत्र दिव्य मरुतों का ऐसा उग्र बल
भूमि हुई कम्पमान, नभ है दोलायमान
महामना दिव्य जन सदा जयी महाबली
त्रिभुवन को हिलादें भव्य देव शक्तिमान्
उनका उत्साह जोश, उनका विजय-घोष
उठता है, कांपें शत्रु; युद्धार्थ करें प्रयाण

(१०)

उद्धर्षय मघवन्नायुधान्युत्सत्वनां मामकानां मनांसि ।
उद् वृत्रहन् वाजिनां वाजिनान्युद्रथानां जयतां यन्तु घोषाः ॥

ऋ० १०.१०३.१०
साम० उ० २२.४.१ (१८५८)

हम खड़े आयुध ले युद्ध के लिए सन्नद्ध
महैश्वर्य इन्द्र इनमें स्वशक्ति भर दे
मेरे साथियों के मन में दे भर महोत्साह
मानें नहीं हार, ऐसा दृढ़ मन कर दे
घेर लेते शत्रु वृत्र अन्दर औ' बाहर के
वृत्रहन् इन्द्र, हम जीतें, ऐसा वर दे
देव, अश्वों में अदम्य शक्ति, वेग भरदे तू
तीव्र बढ़ते रथों को विजय का स्वर दे

(११)

अस्माकमिन्द्र समृतेषु ध्वजेष्वस्माकं या इषवस्ता जयन्तु ।
अस्माकं वीरा उत्तरे भवन्त्वस्माँ उ देवा अवता हवेषु ॥

ऋ० १०.१०३.११
साम० उ० २२.४.२ (१८५९)

हाथ में उठाये जय-ध्वजा हम बढ़ते हैं
सज्जनों का संघ रहा बढ़; इन्द्र, साथ चल
तान तान बाण मारें, इन बाणों की विजय हो
वीर ये हमारे बढ़ें शत्रुओं का सीस दल
सौजन्य विवेक श्रम लिये बढ़ते हैं हम
ये हैं देव-भाव-कर्म, इनमें अजेय बल
दिव्य शक्तियो, तुम्हें पुकारते हैं देव बन
हम रक्षित हों नित्य अविजेय अविचल

(१२)

असौ या सेना मरुतः परेषामभ्येति न ओजसा स्पर्धमाना ।
तां गूहत तमसापव्रतेन यथैतेषामन्यो अन्यं न जानात् ॥

साम० उ० २२.४.३ (१८६०)

इन्द्रियां हैं मरुत् ये, राष्ट्र-सैनिक मरुत्
इन मरुतों को हम दे रहे हैं प्रेरणा
शत्रुओं की सेना चली आती स्पर्धा ओज लिये
इसे आच्छादक तम से मरुतो, ढांपना
हो जाएं ये शत्रु अन्धे, दिखे कुछ भी न इन्हें
सभव नहीं हो एक दूसरे को जानना
जीवन है रणभूमि, पाप-वृत्तियां सहस्रों
बाहर भी पापियों से निरन्तर जूझना

(१३)

अमीषां चित्तं प्रतिलोभयन्ती गृहाणाङ्गान्यप्वे परेहि ।
अभि प्रेहि निर्दह हृत्सु शोकैरन्धेनामित्रास्तमसा सचन्ताम् ।।

ऋ० १०.१०३.१२
साम० उ० २२.५.१ (१८६१))

करते प्रार्थना हम, पापियों के अंग अंग
भय, रोग मूर्तिमान् होकर जकड़ लें
होवे भ्रान्त चित्त उनका न कर पाएं कुछ
दिव्य-भाव-सेना को न दोष ये पकड़ लें
लोक के अमित्र हैं जो असुर अराति घोर
शोक-ज्वाला उनके हृदय को निर्मल ले
पापी, पाप-भावनाएं घोर-अन्धकार-मध्य
भटकती रहें; देव बढ़ें इन्द्र-बल ले

(१४)

प्रेता जयता नर इन्द्रो वः शर्म यच्छतु ।
उग्रा वः सन्तु बाहवोऽनाधृष्या यथासथ ।।

ऋ० १०.१०३.१३
साम० उ० २२.५.२ (१८६२))

नर तुम, शुभ कर्म-नर्तन में रत रहो
नेतृत्व महान् लेके नित्य बढ़ते रहो
पद पद पर जय आरती उतारे आके
अविजेय शिखरों पै नित्य चढ़ते रहो
रक्षा, सुख लिये इन्द्र सर्वदा चलेगा साथ
पाप तमोगुण से सदैव लड़ते रहो
बाहुओं में उग्र शक्ति उत्साह की विद्युत् हो
नव नव कर्म लोकहित करते रहो
रहो जागरूक कर्म-रत; तुम्हें कोई शत्रु
जीत पाए नहीं;—इन्द्र-मन्त्र जपते रहो

(१५)

अवस्रष्टा परा पत शरव्ये ब्रह्मसंशिते ।
गच्छामित्रान् प्रपद्यस्व मामीषां कं च नोच्छिषः ॥

सा॰ उ॰ २२.३.३ (१८६३)

ब्रह्म-मन्त्र द्वारा तुझे किया गया तेज अति
शर-पंक्ति, अमित्रों पै पड़, उन्हें बींध डाल
पूर्णतया बींध, नहीं दुष्ट शत्रु जीता बचे
एक एक के लिये तू बन जा कराल काल
उर जिसका विशाल, ब्रह्म आके बैठता है
वह दिव्य शक्तियों से नित्य होता है निहाल
सौजन्य, विवेक, श्रम लिये नर बढ़े, ब्रह्म
चलता है साथ साथ लिये अस्त्र और ढाल

(१६)

कङ्काः सुपर्णा अनुयन्त्वेनान् गृध्राणामन्नमसावस्तु सेना ।
मैषां मोच्यघहारश्च नेन्द्र वयांस्येनाननु संयन्तु सर्वान् ॥

साम॰ उ॰ २२.६.१ (१८६४)

भावना का दोष लिये यहां नीच दुष्ट हैं जो
सज्जनों के नाश हित उनका है संगठन
सिर पार लादे भार पाप का जो घूमते हैं
बचे नहीं, मारें एक एक को रे चुन चुन
मार डालें उन्हें हम, उनकी सम्पूर्ण सेना
चील, गीध आदि का ही बनें खाद्य अपावन
'सौजन्य, विवेक, श्रम' सज्जन के गुण हैं ये
इनसे रहित हैं जो, हन्तव्य वे हैं दुर्जन

(१७)

अमित्रसेनां मघवन्नस्माञ्छत्रुयतीमभि ।
उभौ तामिन्द्र वृत्रहन्नग्निश्च दहतं प्रति ॥

साम० उ० २२.३.२ (१८६५)

पुष्कल ऐश्वर्यशाली देव इन्द्र तथा अग्नि
मेरी आतमा तथा उसके संकल्प दिव्य जाग
रत नाश में हमारे जो यहां अमित्र-सेना
उसमें लगा दो आग, बना उसको दो राख

(१८)

यत्र बाणाः संपतन्ति कुमारा विशिखा इव ।
तत्रा नो ब्रह्मणस्पतिरदितिः शर्म यच्छतु विश्वाहा शर्म यच्छतु ।

साम० उ० २२.६.३ (१८६६)

जैसे दौड़ते कुमार लहराती हैं शिखाएं
वैसे असुरों पै उड़ पड़ते हमारे बाण
आध्यात्मिक ज्ञान का जो स्वामी ईश है अखण्ड
सभी भांति सज्जनों का करता वह कल्याण
सत्य ज्ञान से बृहत् जिसका हृदय-देश
उसमें है ब्रह्म सदा आकर विराजमान
सौजन्य, विवेक, श्रम लिये बढ़ता है वह
संघर्षों में अखण्डित, गाता विजय के गान

(१९)

वि रक्षो वि मृधो जहि वि वृत्रस्य हनू रुज ।
वि मन्युमिन्द्र वृत्रहन्नमित्रस्याभिदासतः ।।

साम० उ० २२.७.१ (१८६७)

समाज-विरोधी संग्रही ये नीच दुष्ट वृत्र;
वृत्रहन् इन्द्र, तुझे साधते हैं साधु जन
इन राक्षसों से रक्षा कर, इन्हें मार डाल
कर दे तू शत्रुओं का भलीभांति विदलन
वृत्रों के जबाड़े दे तू तोड़, ऐसा मार मुक्का
सब भांति प्रतिक्षण कर उनका हनन
हमें जो बनाता दास, वह नीच हिंसक है,
है अमित्र; योजना का कर उसकी दमन

(२०)

वि न इन्द्र मृधो जहि नीचा यच्छ पृतन्यतः ।
यो अस्माँ अभिदासत्यधरं गमया तमः ।।

साम० उ० २२.८.७ (१८६८)

इन्द्र आत्मा, इन्द्र प्रभु, इन्द्र राष्ट्र-सेनापति
सज्जनों के शत्रुओं को धक्का दे के मार डाल
दल ये बना करके करते हैं आक्रमण
इनको गिरा दे नीचे, चले इनकी न चाल
हमें जो बनाता दास, महानीच हिंसक है
उन्हें अन्धे तम में तू डाल बन महाकाल
सौजन्य, विवेक, श्रम जहाँ, वहां देव इन्द्र
खड़ा जूझता है लिये हाथ में कुलिश, ढाल

(२१)

इन्द्रस्य बाहू स्थविरौ युवानावनाधृष्यौ सुप्रतीकसह्यौ ।
तौ युञ्जीत प्रथमौ योग आगते याभ्यां जितमसुराणां सहो महत्
सामo उo २२.७.३ (१८६९)

इन्द्र आत्मा, इन्द्र प्रभु, इन्द्र राष्ट्र-सेनापति
दृढ़ युवा उसकी हैं अनाधृष्य भुजाएं
आकर्षक, शक्तिशाली सबसे प्रमुख हैं ये
शक्ति किसमें है, शक्ति इनकी आ दबाए
नर इनका प्रयोग कर जब आए मौका
तुझे ये असुरों के आक्रमण से बचाएं
स्वार्थरत असुरों का बड़े से भी बड़ा बल
हो जाता पराजित, हैं भुजाएं ये बलाएं

(२२)

मर्माणि ते वर्मणाच्छादयामि सोमस्त्वा राजामृतेनानुवस्ताम् ।
उरोर्वरीयो वरुणस्ते कृणोतु जयन्तं त्वानु देवा मदन्तु ॥
सामo उo २२.८.१ (१८७०)

तेरे मर्मस्थल को हूं ढकता कवच से मैं
सज्जन, तू सौजन्य, विवेक, श्रम ले के बढ़
राजा सोम अमृत के वस्त्र तुझे पहना दे
गति-क्षेत्र वरुण दे विस्तृत, विस्तृततर
तुझे नहीं कोई भय, पद पद तेरी जय
गीत गाता बढ़ा जा तू, सदा ऊंचे ऊंचे चढ़
प्रतिदिन प्रतिक्षण तेरी जय-यात्रा चले
साहस बढ़ाएं देव फैलाये आशिष-कर

(२३)

अन्धा अमित्रा भवताशीर्षाणोऽहय इव ।
तेषां वो अग्निनुन्नानामिन्द्रो हन्तु वरं वरम् ॥

सामः उ० २२.८.२ (१८७१)

सज्जनों के अमित्रो, हो जाओ तुम सब अन्धे
जैसे होता अंधा यहां सिर-कटा सांप है
लिये दूषित हृदय करते हो हिंसा तुम
अन्धकार वहां जहां क्षुद्र स्वार्थ, पाप है
ईर्ष्या-द्वेष-ज्वाला तुम्हें जलाती है रात दिन
बैठा उर में तुम्हारे तप्त अभिशाप है
चुन चुन देव इन्द्र तुम्हें वह देवे धुन
मार डाले, संग पाप के लगा सन्ताप है

मन मुक्त रहे

इदं देवाः शृणुत ये यज्ञिया: स्थ भरद्वाजो मह्यमुक्थानि शंसति ।
पाशे स बद्धो दुरिते नि युज्यतां यो अस्माकं मन इदं हिनस्ति

अथर्व० २.१२.२

सर्वजनहितकारी कर्म यज्ञ, जो कि करे
उसे शक्ति देतीं यज्ञमय दिव्य शक्तियां
ऋषि भरद्वाज भरते हैं शत शत बल
उसकी प्रशंसा में वे रचते हैं सूक्तियां
बांधे जोकि मेरा मन, भीषण है शत्रु वह
बांधे उसे पाश, घेरें दुर्दशा की पंक्तियां
मन में हैं चारों वेद, मन नित्य हो स्वतन्त्र
मन से मनुज, दिव्य इसकी हों वृत्तियां

इदमिन्द्र शृणुहि सोमप यत्वा हृदा शोचता जोहवीमि ।
वृश्चामि त कुलिशेनेव वृक्षं यो अस्माकं मन इदं हिनस्ति ।।

अथर्व २.१२.३

(२)

मेरी आतमा इन्द्र प्रभु-सोम-रस पान करे
उसको पुकारता हूं, ध्यान से संवारता
हृदय में प्रेम-ज्वाला लिये मैं तड़पता हूं
उस पर विश्व का सर्वस्व हूं मैं वारता
बांधे जोकि मेरा मन, काटता हूं उसे ऐसे
जैसे कि कुल्हाड़ा किसी वृक्ष को है काटता
मन में चारों वेद, मन यह रहे स्वतन्त्र
मन से मनुज, मन तारों को भी लांघता

(३)

पाशे स बद्धो दुरिते नि युज्यतां यो अस्माकं मन इदं हिनस्ति ।

अथर्व० २.१२.३

मन स्वतन्त्र यह रहे, मनन कर हम स्वेच्छा से चले यहां पर
जो आ हमको दास बनाए, बांधें उसको पाश दुःखकर

सज्जन-संगति

परि माग्ने दुश्चरिताद् बाधस्वा मा सुचरिते भज ।
उदायुषा स्वायुषोदस्थाममृताँ अनु ।।

यजु० ४.२८

अग्नि अग्रणी संकल्प शक्तिशाली मन में है
विश्व-नेता अग्नि प्रभु, पथ दिखलाइए
मुझको बचाइए बुरे चरित से सदैव
सुचरित में सदैव मुझको लगाइए
जीवन हो ऐसा जिसमें भरे हों शक्ति प्राण
नव नव उन्नति के लक्ष्य झलकाइए
मर्त्य होके सुचरित से बने हैं अमृत जो
ऐसे सज्जनों से मुझे सर्वदा मिलाइए

दस्यु

(अहित-भावना, अहित-भावना से युक्त जन)

ससानात्याँ उत सूर्यं ससानेन्द्रः ससान पुरुभोजसं गाम् ।
हिरण्यमुत भोगं ससान हत्वी दस्यून् प्रार्यं वर्णमावत् ।।

ऋ० ३.३४.९

आत्मा मेरा इन्द्र जागा, प्रगति का अश्व मिला
शत शत सूर्यों के समान ज्योति छा गई
ज्ञानेन्द्रियां गौएं मेरी हो गईं प्रबुद्ध सारी
करती हैं विश्व-हित; पूर्ण भोग पा गईं
हित रमणीय सब वस्तुएं हैं प्राप्त हुईं
अहित की भावना है शून्य में बिला गई
आर्यों के उदार भाव मन में हैं जाग गए
वरणीय आर्य-धर्म-भावना समा गई

(२)

मायाभिरुत्सिसृप्सत इन्द्र द्यामारुरुक्षतः।
अव दस्यूँरधूनथाः ॥

ऋ० ८.१४.१४

पर-अहित में लगे दस्यु दिखलाते माया
चाहते वे छल कपट से ऊंचा चढ़ना
बस उनका चले तो तोड़ लें सितारों को वे
बिना सत्य कर्म के वे चाहते हैं बढ़ना
मेरा आत्मा, इन्द्र उनको पकड़ कुचल दे
प्रभु इन्द्र, पूर्ण दस्युओं की हो न कामना
सौजन्य विवेक श्रम लिये बढ़ते हैं हम
चलती है दिवारात्रि महाशक्ति-साधना

(३)

पातं नो मित्रा पायुभिरुत त्रायेथां सुत्रात्रा।
साह्याम दस्यूँ तनूभिः ॥

साम० उ० ६.२.३ (९८७)

मित्र-प्रेम-भावना, वरुण-न्याय-भावना ले
बढ़ता हूं मेरे लिए नहीं कोई भय है
हर पद रक्षित है, हर पद अक्षत है
जिस ओर बढ़ता हूं, जय है, विजय है
किसी का अहित गुन दस्यु नहीं बनता हूं
दानशील देव-भावना-भरा हृदय है
स्वार्थ-भावना से ग्रस्त दस्यु; प्रेम-न्याय-शील
विश्व-नियन्ता उनका कर देता क्षय है

अभिमान और अभिमानी जन

दण्डं हस्तादाददानो गतासोः सह श्रोत्रेण वर्चसा बलेन ।
अत्रैव त्वमिह वयं सुवीरा विश्वा मृधो अभिमातीर्जयेम ।।

अथर्व० १८.२.५९

कठिन सरल में से सरल को अपनाते
प्राप्ति-हित नीच करते छल का विधान हैं
कितने हों मोटे ताजे, कितने हों स्फूर्तिमान्
वे तो जड़ पशु हैं, वे मृतक-समान हैं
दण्ड, बल, तेज छीन उनका, वे बधिर हों
नाश्य उन अभिमानियों का अभिमान है
उठ खड़े हों सुवीर, बजा दें समर-भेरी
जहां सत्य, धर्म, वहां मूर्त भगवान् हैं

(२)

सहस्व नो अभिमातिं सहस्व पृतनायतः ।
सहस्व सर्वान् दुर्हार्दः सुहार्दो मे बहून् कृधि ।।

अथर्व० १९.३२.६

प्रभु, अभिमानी शत्रु हों पराजित हमारे
करते हैं आक्रमण, उनका विनाश हो
बुरे दिलवाले पर-अहित में रत हैं ये
इनका नाश कर ईश, धर्म का प्रकाश हो
अच्छे दिल वाले हमें शत-शत मित्र मिलें
सुखमय जीवन की लीला का विलास हो
सौजन्य, विवेक, श्रम लिये यहां देव जो हैं
रहें दिनरात ऋषि मुनि वे हमारे पास

(३)

द्युम्नेषु पृतनाज्ये पृत्सुतूर्षु श्रवःसु च ।
इन्द्र साक्ष्वाभिमातिषु ।।

अथर्व० २०.१६.७

सत्य-धर्म न्याय्य-पथ पै मैं बढ़ूं प्रतिक्षण
नीच षड़यन्त्रकारी अपना बनाते दल
मौका पाके करते हैं मुझ पर आक्रमण
इन्द्र, तेरा पद बड़ा, तू है भव्यकीर्तिमान्
कर निज शक्ति का तू दिव्य देव, प्रदर्शन
नीच अभिमानियों का कुचल दे उठा सिर
प्रतिपद प्रतिक्षण विजयी तू वीर, बन

अराति

(अदान-भावना और अदानी जन)

परि मां परि मे प्रजां परि णः पाहि यद् धनम् ।
अरातिर्नो मा तारीन्मा नस्तारिषुरभिमातयः ।।

अथर्व० २.७.४

प्रभु मेरी सन्तति की रक्षा करो, रक्षा करो
मेरी धन-संपद् पै हो तेरी रक्षा-छाया
हो अदानशील का न मुझ पर अधिकार
अभिमानी जन से न जाऊं कभी सताया

(२)

न तमंहो न दुरितं कुतश्चन नारातयस्तितिरुर्न द्वयाविनः ।
विश्वा इदस्माद् ध्वरसो वि बाधसे यं सुगोपा रक्षसि ब्रह्मणस्पते ।।

ऋ० २.२३.५

आध्यात्मिक ज्ञानपति प्रभु, जिसकी सुरक्षा
करते हो, कोई दुःख, दुरित न रहता
औ' अदानशील व्यक्ति कर सकते न कुछ
सज्जन पै तेरा महादान है बरसता
मन में है कुछ और कर्म में है कुछ, ऐसे
दुर्जनों का बस नहीं अणुभर चलता
देव ब्रह्मणस्पति तू; हिंसक और हिंसाएं
दूर कर देता है तू; सोम-रस झरता

(३)

त्वया वयं सुवृधा ब्रह्मणस्पते स्पार्हा वसु मनुष्या ददीमहि ।
या नो दूरे तळितो या अरातयोऽभि सन्ति जम्भया ता अनप्नसः ।।

ऋ. २.२३.३

आत्मिकज्ञानद प्रभु, तेरा जो कि बने सखा
उसको बढ़ाता है तू, पथ दिखलाता है
मनुष्यों के लिए जो कि स्पृहणीय वसु यहां
तेरा सखा भर-भर झोली नित्य पाता है
दूर पास कहीं भी अदानशील व्यक्ति दुष्ट
देते बिजली-सा धक्का, उन्हें तू भगाता है
शुचिकर्महीनता से तुझको घृणा है देव
सत्कर्मशील पर तू रस बरसाता है

(४)

भवा नो अग्ने सुमना उपेतौ सखेव सख्ये पितरेव साधुः ।
पुरुद्रुहो हि क्षितयो जनानां प्रति प्रतीचीर्दहतादरातिः ।।

ऋ० ३.१८.१

अग्नि अग्रणी परेश, तेरे पास आएं जब
तेरी सौमनस्य-निधि के द्वार खुल जाएं
जैसे सखा सखा पर, माता-पिता पुत्र पर
होते कल्याणमय, हो हम पर; सुख पाएं
महाद्रोह करने का जिनका स्वभाव, प्रभु,
छिन्नभिन्न कर डाल उनकी योजनाएं
करते हैं आक्रमण स्वार्थी ये अदानशील
इन्हें भस्म कर, जब भी ये सिर उठाएं

(५)

योऽस्मभ्यमरातीयाद् यश्च नो द्वेषते जनः ।
निन्दाद् यो अस्मान् धिप्साच्च सर्वं तं भस्मसा कुरु ॥
यजु:० ११.८०

प्रभु, जो अदानशील व्यवहार दिखलाएं
जो हमारा बुरा चाहते हैं पापवृत्ति जन
करते हैं निन्दा, करते कपट, छल, हिंसा
सबको तू भस्म कर, खिलें सज्जन-सुमन

(६)

मा प्रगाम पथो वयं मा यज्ञादिन्द्र सोमिनः ।
मान्तस्थुर्नो अरातयः ॥
ऋ० १०.५७.१

देव इन्द्र, सत्य-पथ को न कभी हम छोड़ें
सदा आत्म-रस-सोम में हम रहें मगन
विश्व-हित-कार्य-यज्ञ करते रहें सदैव
हो अदान स्वार्थ-भाव मन में न एक क्षण

(७)

अपामीवामप विश्वामनाहुतिमपारातिं दुर्विदत्रामघायतः ।
आरे देवा द्वेषोऽस्मद्युयोतनोरु णः शर्म यच्छता स्वस्तये ॥
ऋ० १०.६३.१२

आत्माहुति दें न जो अदानशील वे अराति
उनका मन औ' तन हो जाता है रोगग्रस्त
उनमें है कुमति, बुरा सभी का चाहते हैं
स्वार्थभावलीन करते सभी को हैं वे त्रस्त
देवो, ऐसे पापकामियों को दूर रखो तुम
उनकी कुयोजनाएं हो जाएं ये अस्त व्यस्त
कृपा करो, हममें न आए पाप रोग घोर
दो हमें विशाल उर, छा जाए स्वस्ति समस्त

(८)

यो नो अग्ने अररिवाँ अघायुररातीवा मर्चयति द्वयेन ।
मन्त्रो गुरुः पुनरस्तु सो अस्मा अनु मृक्षीष्ट तन्वं दुरुक्तैः ।

ऋ० १.१४७.५

जग में अदाता जन भरते हैं निज घर
औरों के अहित की है हृदय में कामना
मन में है पाप-मति, वचनों में क्रूरता है
अग्नि अग्रणी, न पूरी उनकी हो योजना
मानसिक छल उनका उन्हें ही पड़े भारी
उनको ही नष्ट करे दुर्वचन-जल्पना
मन में संकल्प-अग्नि जिस जन के जगा है
प्रभु अग्नि पूर्ण करता सहर्ष प्रार्थना

(९)

इन्त्वेनान् प्र दहत्वरिर्यो न पृतन्यति ।
क्रव्यादाग्निना वयं सपत्नान् प्र दहामसि ॥

अथर्व० १३.१.२९

मार डाले इन अरियों को अग्नि प्रभु देव
संकल्प की अग्नि इन्हें करदे जला के राख
हृदय उदार रख सत्य-पथ-गामी हम
अग्नि प्रभु हमें देगा दिव्य शक्तियां औ' साख
हम से जो द्रोह करें छोटे दिल वाले अरि
कर देंगे भस्म, लाएं बन्धु वे हजार लाख
सपत्नों को शव के समान हम फूंक देंगे
प्रभु-कृपा से खुलेगी ज्ञान की तृतीय आंख

(१०)

यथा वशन्ति देवास्तथेदसत् तदेषां नकिरा मिनत् ।
अरावा चन मर्त्यः ॥

ऋ० ८.२८.४

सत्य-पथ पर चलो, करो नहीं शंका, भय
दिव्य शक्तियों का दृढ़ शासन है जग पर
प्रभु की इच्छा के बिना पत्ता भी न हिलता है
प्रभु का नियन्त्रण है अखण्ड अविनश्वर
छोटे दिल वाले मर्त्य कर सकते न कुछ
पंजा दिव्य शक्तियों का उन पर है प्रखर
सौजन्य, विवेक, श्रम, शास्त्र, शस्त्र लिये बढ़
शेष ईश पै दे छोड़, होगा शुभ ही हे नर

(११)

अयं दशस्यन्नर्येभिरस्य दस्मो देवेभिर्वरुणो न मायी ।
अयं कनीन ऋतुपा अवेद्यमिमीताररुं यश्चतुष्पात् ॥

ऋ० १०.९९.१०

इन्द्र आत्मा, इन्द्र प्रभु, राष्ट्र-सेनापति इन्द्र
नर-हितकारी मरुतों के साथ शोभमान
दर्शनीय अद्भुत है प्रज्ञामय शक्तिशाली
दाता इन्द्र न्यायी प्रेमी वरुण के है समान
कान्तिमय, नियम का रक्षक है देव इन्द्र
स्वार्थियों का नाशक है, शक्ति इसकी महान्
स्वार्थी तो मनुज-देह में चौपाया पशु क्षुद्र
अरस अदानी जिन्दगी है उसकी श्मशान

(१२)

यद् वो देवाश्चकृम जिह्वया गुरु मनसो वा प्रयुती देवहेळनम् ।
अरावा यो नो अभि दुच्छुनायते तस्मिन् तदेनो वसवो नि धेतन ॥

ऋ० १०.३७.१२

दिव्य शक्तियो, तुम्हीं से बसा, टिका है जगत्
तुम्हें अपना मनुज देव बन जाता है
करते हैं पाप हम, अनुचित बोलते हैं
मन अमनन से हा गड़बड़ा जाता है
प्रभु होता है नाराज, बिगड़ते सभी साज
पांव है जिसका फिसलता, चोट खाता है
हम रहें धर्मी, हमसे जो द्रोह करे अरि
लगता उसी को पाप, दुःख घोर पाता है

दुर्हृद्, दुर्हार्द, दुर्हित, दुर्हृणायुः

(बुरे संस्कार तथा उनसे युक्त जन)

ये मा क्रोधयन्ति लपिता हस्तिनं मशका इव ।
तानहं मन्ये दुर्हितान् जने अल्पशयूनिव ॥

अथर्व० ४.३६.७

जगत्-अहित में जो लगे रहते दुर्हित
पापमय संस्कारों से दूषित हृदय है
बकते हैं, करते हैं बातें ऊटपटांग ये
इन नीच जनों से न मुझे कोई भय है
जैसे हाथी मच्छरों को देता कुचल मसल
प्रभु-भक्त इनका रे कर देता क्षय है
मुझको दिलाते क्रोध; खैर इनकी नहीं है
मेरे लिए हैं ये तुच्छ कीट; मेरी जय है

(२)

ये ते शृङ्गे अजरे जातवेदस्तिग्महेती ब्रह्मसंशिते ।
ताभ्यां दुर्हार्दमभिदासन्तं किमीदिनं प्रत्यञ्चमर्चिषा जातवेदो वि निक्ष्व

अथर्व० ८.३.२५

बुरे दिलवाले यहां जन पर-हानि-रत
दूसरों की निन्दा में ही ये लगे हैं रात दिन
इसको सताते कभी लूटते हैं उसको जा
रात दिन करते हैं पाप हाय, अनगिन
ज्ञानी का कर्त्तव्य यह लेके मन, बुद्धि अस्त्र
उनको जलादे, खिले सज्जनों का उपवन
प्रभु, ज्ञान, शक्ति दे तू सर्वज्ञ तू जातवेदा
नष्ट हों दुर्हार्द होवे सुहार्दों (सुहृदों) का आगमन

शत्रु

(समाज विरोधी भावना और उससे युक्त जन)

अभीदमेकमेको अस्मि निषाळभी द्वा किमु त्रयः करन्ति ।
खले न पर्षान् प्रति हन्मि भूरि किं मा निन्दन्ति शत्रवोऽनिन्द्राः

ऋ० १०.४८.७

युद्धभूमि में अकेला खड़ा हूं मैं निर्भय हो
आए कोई एक शत्रु, सिर मैं कुचल दूं
एक के मुकाबले में दो भी आए, मार दूं मैं
तीन भी क्या कर लेंगे, उनको मैं दल दूं
जैसे गेहूं धान्यादि हैं ऊखल में कूटे जाते
ऐसे उन्हें कूट कूट कर मैं मसल दूं
इन्द्र के विरोधी शत्रु करते क्या मेरी निन्दा
उनको उनके किये का तुरन्त फल दूं

(२)

सिंह प्रतीको विशो अद्धि सर्वा व्याघ्रप्रतीकोऽव बाधस्व शत्रून् ।
एकवृष इन्द्रसखा जिगीवाञ्छत्रूयतामा खिदा भोजनानि ।।

अथर्व० ४.२२.७

डर मत मेरे आत्मन्, तू है सिंह के समान
निगल ले सब शत्रुओं को तू झपट के
आए शत्रुदल व्याघ्र के समान छापा मार
रोक उन्हें मार्ग में ही रोब से डपट के
वैसे तो अकेला भी तू है अजेय बलवान्
साथ इन्द्र प्रभु तेरे, बढ़ जा बेखटके
शत्रुओं को जीत ले तू, कर ऐसी नाकाबन्दी
भूखे मरें, रोएं, पत्थरों पै सिर पटकें

(३)

भद्रादधि श्रेयः प्रेहि बृहस्पतिः पुरएता ते अस्तु ।
अथेममस्या वर आ पृथिव्या आरे शत्रुं कृणुहि सर्ववीरम् ॥

अथर्व० ७.८.१

भद्र, भद्र और भद्र, तुझे मिले नित्य भद्र
तेरे भव्य श्रेयस् का कोई अन्त हो नहीं
बृहस्पति प्रभु ज्ञान लिये आगे आगे चले
पृथ्वी के विस्तार पर गति हो सभी कहीं
तेरे शत्रु सारे दूर भाग जाएं भय खाके
हो तेरी कीर्ति-गीति स्थल स्थल गूंज रही
तेरे सभी साथी धीर उग्र शूरवीर होवें
कर प्रताप से तू सारी शत्रु-विहीन मही

(४)

त्वया वयं मघवन्निन्द्र शत्रूनभि ष्याम महतो मन्यमानान् ।
त्वं त्राता त्वमु नो वृधे भूर्विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥

ऋ० १.१७८.५

सर्वविध-ऐश्वर्य-संपन्न, इन्द्र, दिव्य आत्मन्
ऐसी शक्ति दे, हमारे शत्रु बस में रहें
अपने को बहुत समझ अकड़ते हैं जो
तेज से हमारे सब बुरी भांति वे दहें
रक्षक तू सज्जनों की रक्षा में निरत नित
वृद्धि हो हमारी, हम बढ़ लक्ष्य को गहें
तेरे पास हैं अनन्त, हम बनें योग्य पात्र
दिव्य भव्य भोग-नदियां निरन्तर बहें

(५)

सजोषा इन्द्र सगणो मरुद्भिः सोमं पिब वृत्रहा शूर विद्वान् ।
जहि शत्रूँरप मृधो नुदस्वाथाभयं कृणुहि विश्वतो नः ॥

ऋ० ३.४७.२

दिव्य इन्द्र, मेरे अनुकूल प्रीति से सदा हो
मरुतों के साथ सदा कर सोम का तू पान
आवरक वृत्र का तू करदे समूल नाश
तू है शूरवीर तू है महामति है विद्वान्
हम पर आक्रमण करते जो हिंसाकारी
उन शत्रुओं को मार; रहे न नामोनिशान
भय हो न कहीं हमें, सब ओर ही अभय हो
हम रहें तेरे साथ; तू है महाबलवान्

(६)

आ नो भर वृषणं शुष्ममिन्द्र धनस्पृतं शूशुवांसं सुदक्षम् ।
येन वंसाम पृतनासु शत्रून् तवोतिभिरुत जामींरजामीन् ॥

ऋ० ६.१९.८

दिव्य इन्द्र, हो प्रकट; हमें ऐसा दे तू बल
खून सूख जाए शत्रुओं का गर्व कम्पमान
भरा जिसमें उत्साह, महाशक्ति से भरा जो
भरी गति, वह बल दे, हों धन के निधान
शत्रु ये बनाके सेना करते हैं आक्रमण
उन्हें जीतें, स्थापित करें हम स्वकीर्तिमान
अपने पराए जो भी शत्रु यहां बसते हों
उनका न बचे कोई जग में नामोनिशान

(७)

ऊर्ध्वो भव प्रति विध्याध्यस्मदाविष्कृणुष्व दैव्यान्यग्ने ।
अव स्थिरा तनुहि यातुजूनां जामिमजामिं प्र मृणीहि शत्रून् ।।

ऋ० ४.४.५

मन की संकल्प शक्ति अग्नि, उठ जाग जाग
हम पै जो आक्रमण करें, उन्हें बींध डाल
कर दे प्रकट दिव्य शक्तियों को अपनी तू
तोड़ दे कपटियों का कपट से भरा जाल
करते अहित जोकि अपने-पराए शत्रु
सिर उनका कुचल धर रूप विकराल
निर्भय हो बढ़, विश्व-नेता प्रभु अग्नि तुझे
शक्ति देगा पहनाएगा सदैव जयमाल

परिपन्थी

(बाधा पहुंचाने वाले जन)

अप त्यं परिपन्थिनं मुषीवाणं हुरश्चितम् ।
दूरमधि स्रुतेरज ।।

ऋ० १०.४२.३

सौजन्य, विवेक, श्रम लिये सदा जागता हूं
वंचक, लुटेरे चोर कितने ही घूमते
सज्जन तो बनो, किन्तु बनो नहीं मूर्ख बन्धु
सज्जनों के परिपन्थी दुष्ट मौका ताकते
मन में ले शास्त्र, कर में ले शस्त्र चलते जो
वे ही दुर्जनों को जीत सुख, शान्ति भोगते
किसी से भी द्वेष न हो, किन्तु रहो सावधान
प्रायः दुर्जन ये बिना दण्ड के न मानते

रिपु

(हिंसक जन, चोर, डाकू)

यं रिपवो न रिषण्यवो गर्भे सन्तं रेषणा रेषयन्ति ।
अन्धा अपश्या न दभन्नभिख्या नित्यास ईं प्रेतारो अरक्षन् ॥
ऋ० १.१४८.५

मन में संकल्प अग्नि जिस जन के जगी है
अग्नि अग्रणी विश्वेश सदा रक्षा करता
पापी हिंसक न कुछ उसका पाते बिगाड़
उनका कुटिल दल सामने न टिकता
ज्ञान से रहित अंधे पापी सब जल जाते
अग्नि का प्रखर तेज उनको है दहता
प्रभु को जो तृप्त करते सत्कर्मों से सुजन
प्रभु का दल उनके संग सदा रहता

(२)

त्वमङ्ग जरितारं यविष्ठ विश्वान्यग्ने दुरितानि पर्षि ।
स्तेना अदृश्रन् रिपवो जनासोऽज्ञातकेता वृजना अभूवन् ॥
ऋ० ५.३.११

जागे संकल्प की अग्नि, मति-दृग खुले रहें
प्रभु अग्नि अग्रणी से लगो रहे लौ हमारी
श्रेष्ठ युवक तू अग्नि, तुझमें अक्षय शक्ति
दुरितों से पार ले जाता तू जग-हितकारी
हिंसक, कुटिल, चोर, पापी, रिपु सज्जनों के
अग्नि खोल देता तू कलई उनकी है सारी
सज्जन-संकल्प जागे, नष्ट हों कुटिल रिपु
खिली रहे प्रभु की सुरभिमय फुलवारी

(३)

ये पायवो मामतेयं ते अग्ने पश्यन्तो अन्धं दुरितादरक्षन् ।
ररक्ष तान्त्सुकृतो विश्ववेदा दिप्सन्त इद्रिपवो नाह देभुः ।।

ऋ० ४.४.१३

अग्नि अग्रणी हे ईश, तेरी ज्ञान-किरणों से
ममता से अंधा जन दिव्यालोक पाता है
हो जाते दुरित दूर सुकृती हैं सुख पाते
सब कुछ जानता तू, दुःख से बचाता है
पापमति बुरा करना जो चाहते हैं रिपु
चालें उनकी सभी तू बेकाम बनाता है
ममता की अंधी सीमा छोड़ देता मनुज जो
सारा विश्व उसका कुटुम्ब बन जाता है

वृकः

(क्रूर भावना और क्रूर जन)

इन्द्रा युवं वरुणा दिद्युमस्मिन्नोजिष्ठमुग्रा नि वधिष्टं वज्रम् ।
यो नो दुरेवो वृकतिर्दभीतिस्तस्मिन्मिमाथामभिभूत्योजः ।।

ऋ० ४.११.४

न्याय-प्रेम-युक्त प्रभु, नाम तेरा है वरुण
महाशक्तिशाली प्रभु, इन्द्र तेरा नाम है
न्याय-मार्ग पर श्रम कर हम बढ़ते हैं
उर-मन्दिर में तेरा बना रखा धाम है
लोग हैं जो भेड़िए-से, करते हैं हिंसा क्रूर
उनकी हिंसा करें, न काम आता साम है
तेरी शक्ति मिले जिसे, बनता है ज्ञानी कृष्ण
वह बनता असुरों का नाशक राम है

(२)

यो न इन्द्राभितो जनो वृकायुरादिदेशति ।
अधस्पदं तमीं कृधि विबाधो असि सासहिर्नभन्तामन्यकेषां ज्याका अधि धन्वसु ॥

ऋ० १०.१३३.४

इन्द्र आत्मा, इन्द्र प्रभु, राष्ट्र-सेनापति इन्द्र,
सज्जन मैं, चलता हूं नित्य न्याय-पथ पर
किन्तु नर-तन में जो भेड़िए हैं दुष्ट नीच
षड़यन्त्र करते, झपटते उचक कर
तेरी शक्ति है अदम्य दुष्ट-अभिभवकारी
पांवों तले नीचों को तू कुचल दे देववर
धनुषों पै चढ़ी टूट डोरियां वे निन्द्य जाएं
चढ़ ही न पाएं देव, उनके मलीन शर

रक्षः, रक्षस्वी

(जिनसे बच कर रहना है)

घृतवाहन दीदिवः प्रति ष्म रिषतो दह ।
अग्ने त्वं रक्षस्विनः ॥

ऋ० १.१२.५

अग्नि अग्रणी विश्वेश, तुझ में महान् तेज
तेरी दीप्ति-किरणें ये मोहन, प्रखर हैं
करनी हैं जिनसे स्वरक्षा हमें रक्षस् वे
स्वार्थ हित राक्षस वे हिंसा में तत्पर हैं
सबके वे प्रतिकूल, करते हैं षड़यन्त्र
अपना घर भर लूं, रहती फिकर है
विश्वनेता प्रभु, उन्हें कर दे तू भस्मसात्
इन रक्षस्-जनों का नाश पुण्य वर है

(२)

उद्वृह रक्षः सहमूलमिन्द्र वृश्चा मध्यं प्रत्यग्रं शृणीहि ।
आ कीवतः सललूकं चकर्थ ब्रह्मद्विषे तपुषिं हेतिमस्य ॥

ऋ० ३.३०.१७

जिनसे स्वरक्षा हमें करनी हैं रक्षस् वे
इन्द्र, उन राक्षसों को जड़ से उखाड़ दे
काट दे तू हाथ पांव, काट दे तू अंग अंग
इनकी कलुष-योजनाओं को पछाड़ दे
छल से वे धीरे धीरे खिसकते आ रहे हैं
आएं पास नहीं, दूर से ही ऐसा मार दे
ब्रह्म-द्वेषी, ज्ञान-द्वेषी, उर इनका है क्षुद्र
फेंक इन पर इन्द्र, तप्त हथियार दे

(३)

पाहि नो अग्ने रक्षसः पाहि धूर्तेरराव्णः ।
पाहि रीषत उत वा जिघांसतो बृहद्भानो यविष्ठ्य ॥

ऋ० १.३६.१५

मानव के उर में संकल्प-अग्नि राजता है
विश्वनेता प्रभु अग्नि की सभी पै है नजर
अग्नि अग्रणी, हैं तेरी किरणें विशाल उर
श्रेष्ठ युवक तू राक्षसों से मेरा त्राण कर
पापी रक्षस्, स्वरक्षा जिनसे करें मनुज;
हैं अदानी कपटी वे, हैं पाप में ही तत्पर
करते हैं हिंसा, हिंसा की बनाते योजनाएं
इनसे बचाए अग्नि, तेरी शक्तियां प्रखर

(४)

पिशङ्गभृष्टिमम्भृणं पिशाचिमिन्द्र सं मृण ।
सर्वं रक्षो नि बर्हय ।।

ऋ० १.१३३.५

जिनसे स्वरक्षाहित रहें सावधान हम
उन रक्षस् जनों को देव इन्द्र, दे कुचल
हथियार उनके हैं उगलते उग्र ज्वाला
करते आडम्बर वे विविध कपट छल
हेराफेरो करने में बीतती हा, जिन्दगी है
मात्र बात बनाने में ही वे पापी हैं कुशल
मेरी आत्मा इन्द्र, जाग, प्रभु इन्द्र, कृपा कर
रक्षस् जनों का नाश करें, हमें दे तू बल

यातुधान

(छलकपट आडम्बर करने वाला, मायावी)

त्रिर्यातुधानः प्रसितिं त एत्वृतं यो अग्ने अनृतेन हन्ति ।
तमर्चिषा स्फूर्जयञ्जातवेदः समक्षमेनं गृणते नि वृङ्धि ।।

ऋ० १०.८७.११

मायाजाल फैलाते हैं, यातुधान कहलाते
स्वार्थहित इसे उसे जाकर हैं फांसते
अग्नि अग्रणी, तुझे है ज्ञान सभी भांति शुचि
कस कर इन्हें बांध, जोर हैं ये मारते
सत्यमार्गी तेरे भक्त जो हैं उनके समक्ष
इन्हें मार फेंक, ये हैं पाप ही विस्तारते
ये अनृतमय, करते हैं नियमों का भंग
कर इन्हें ज्वाला-दग्ध, ये हैं नहीं मानते

(२)

यातुधानस्य सोमप जहि प्रजां नयस्व च ।
नि स्तुवानस्य पातय परमक्ष्युतावरम् ।।

अथर्व० १.८.३

मायाजाल फैलाते जो यातुधान कहलाते
आत्म-रस-लीन इन्द्र, उनका विनाश कर
नष्ट उनका हो वंश, रहें हमसे वे दूर
करें मीठी मीठी बातें, छल उनका प्रखर
देख न वे पाएं, फोड़ उनकी दे दोनों आंखें
उन्हें अक्षिदान विश्व हेतु महादुःखकर
आंख बुद्धि की निकाल, कर न पाएं वे कपट
फोड़ बाहर की आंखें, जाएं वे भटक मर

(३)

हिरण्यहस्तो असुरः सुनीथः सुमृळीकः स्ववां यात्वर्वाङ् ।
अपसेधन् रक्षसो यातुधानानस्थाद्देवः प्रतिदोषं गृणानः ।।

ऋ० १.३५.१०

अन्धकार-आवरण फाड़ आता सविता है
जन जन के उर में प्रेरणा जगाता है
आत्म-शक्ति-युक्त वह सुपथ दिखाता हमें
स्वर्णिल मंगल हस्त अपने बढ़ाता है
मायावी जो राक्षस हैं, उनसे सदैव बचें
प्रतिरात्रि ध्यान योगी मनुज लगाता है
सौजन्य, विवेक, श्रम, उत्साह सबल लेके
ज्योतिष्पथगामी यात्री बढ़ता ही जाता है

(४)

इन्द्र जहि पुमांसं यातुधानमुत स्त्रियं मायया शाशदानाम् ।
विग्रीवासो मूरदेवा ऋदन्तु मा ते दृशन्त्सूर्यमुच्चरन्तम् ।।

अथर्व० ८.४.२४

मायाजाल फैलाते जो यातुधान कहलाते
यातुधान पुरुष का कर इन्द्र, तू विनाश
स्त्री जो मायाविनी है, चलती है नाना दांव
छिन्नभिन्न करदे तू उसके समस्त पाश
धन आदि मिथ्या देवों के जो बने पूजक हैं
काट सिर उनका जला दे, वे सश्वास लाश
रात को वे सोएं, सोए सोए पापी मर जाएं
निहारें न कल वे उगते सूर्य का प्रकाश

पृतना, पृतन्यत्

(आक्रमण करने वाली शत्रु सेना, शत्रु दल)

वयं शूरेभिरस्तृभिरिन्द्र त्वया युजा वयम् ।
सासह्याम पृतन्यतः ।।

ऋ० १.८.४.

शक्तिशाली इन्द्र, हम अस्त्र शस्त्र में प्रवीण
महाशूरवीरों को हैं सजाते भव्य सेनाएं
दुर्जनों का दल जब आक्रमण करे आके
टिक न सके मुंह की खा सभय भाग जाए

(२)

अग्नेरिन्द्रस्य सोमस्य देवानामूतिभिर्वयम् ।
अरिष्यन्तः सचेमह्यभि ष्याम पृतन्यतः ॥

ऋ० २.८.६

नीच लोग संगठन कर साधु सज्जनों पै
करते हैं आक्रमण, सतत संघर्ष है
उनसे अहिंसित, करें विजित हम उन्हें
सज्जनों में दिव्य शक्तियों का महोत्कर्ष है
अग्नि, इन्द्र, सोम तथा अन्य देव रक्षक हैं
तेज, बल, आनन्द का निरन्तर स्पर्श है
बढ़ें हम, नहीं डरें, दुष्ट डर भाग जाएं
जहां प्रभु की कृपा है, वहां नित्य हर्ष है

(३)

उपक्षेतारस्तव सुप्रणीतेऽग्ने विश्वानि धन्या दधानाः ।
सुरेतसा श्रवसा तुञ्जमाना अभि ष्याम पृतनायूँरदेवान् ॥

ऋ० ३.१.१६

देव अग्नि, तेरा मार्ग-दर्शन प्रशस्त सदा
हम तुझे आगे रख बढ़ते ही जाते हैं
सब धन-साधनों से हम परिपूर्ण देव
विश्व-हित-दान-भावना में मदमाते हैं
महावीर्ययुक्त हम, यश है हमारा भव्य
सृजनता सुमति औ' श्रम हमें भाते हैं
देव भावहीन शत्रु मिल करें आक्रमण
इनको कुचल, हम बढ़ मोद पाते हैं

(४)

वि न इन्द्र मृधो जहि नीचा यच्छ पृतन्यतः ।
यो अस्माँ अभिदासत्यधरं गमया तमः ।

ऋ० १०.१५२.४

इन्द्र, जिनका स्वभाव स्वार्थरत होके सदा
सज्जनों को लूटते हैं दुष्ट कर संगठन
उन्हें नष्ट कर दे तू, हमें जो बनाएँ दास
रौंदे जाएँ पांवों तले, होवे उनका पतन
ऐसे अन्धकार में जा गिरें महास्वार्थी नीच
सफल न होने पावे उनका कोई जतन
'सौजन्य विवेक, श्रम' मन्त्र जपते हैं हम
भर के उत्साह बल करते हैं आक्रमण

सपत्न

(ईर्ष्या करने वाले)

उदगादयमादित्यो विश्वेन तपसा सह ।
सपत्नान् मह्यं रन्धयन् मा चाहं द्विषते रधं
तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याणि ।
त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः
सुधायां मा धेहि परमे व्योमन् ।।

ऋ० १७.१.२४

मैं हूं अमृत का पुत्र नित्य ही स्वतन्त्र दिव्य
मेरा है आदर्श सूर्य नभ में दमकता
महातेज-ज्वालाओं से सुन्दर देदीप्यमान
तम की घटाओं को वह छिन्न भिन्न करता
उन द्वेषियों का नहीं मुझ पर चले बस
बढ़ूं ईर्ष्याग्रस्त घातकों को मैं कुचलता
कण-कण-व्यापी विष्णु, तुझको बना आदर्श
तेरे वीर कर्मों का मैं अनुकरण करता
विश्वरूप दृष्टियों से हमको तू तृप्त कर
मुझे परम व्योम में सुधा में दे स्थिरता

(२)

धृतादुल्लुप्तं मधुना समक्तं भूमिदृंहमच्युतं पारयिष्णु ।
भिन्दत् सपत्नानधरांश्च कृष्वदा मा रोह महते सौभगाय ।।

अथर्व० ५.२८.१४

विश्वव्यापी ब्रह्म, मेरे अन्दर समाया है तू
तेजोमय मधुमय अच्युत महान् है
भूमिवासी सज्जनों को दृढ़ता है तू ही देता
करता है कार्य सिद्ध, दिव्य भगवान् है
ईर्ष्याग्रस्त घातक सपत्न जोर दिखलाते
उन्हें छिन्नकर रौंद, तू प्रभाववान् है
सौजन्य, विवेक, श्रम, बल ले सुभग बनूं
वीर-कर्म-लीलाओं में जीवन की शान है

(३)

ऐषां यज्ञमुत वर्चो ददेऽहं रायस्पोषमुत चित्तान्यग्ने ।
सपत्ना अस्मदधरे भवन्तूत्तमं नाकमधि रोहयेमम् ।।

अथर्व० १.६.४

ईर्ष्याग्रस्त घातक सपत्न जोर दिखलाते
इनका यज्ञ, वर्चस्, समृद्धि, ज्ञान छीनूंगा
रहें ये हमारे पांवों तले, दुःख नाश होवे
अग्नि बन अग्रणी तू, हर्ष-पुष्प बीनूंगा

(४)

ऋषभं मा समानानां सपत्नानां विषासहिम् ।
हन्तारं शत्रूणां कृधि विराजं गोपतिं गवाम् ।।

ऋ० १०.१६६.१

शत्रुहन्ता इन्द्र, जाग; बनूं मैं प्रशंसनीय
दर्शनीय उनमें जो जन हैं मेरे समान
ईर्ष्याग्रस्त घातक सपत्नों को विजित करूँ
शत्रुओं का नाश कर बनूं दिव्य दीप्तिमान्
ज्ञानेन्द्रियां-गौएं मेरी बस में रहें सदा ही
देवपुर-देह में मैं बैठूं बन भगवान्
भूमि, धन, संपद्, का बनूं स्वामी सुख पाऊं
पद-पद क्षण क्षण बनूं तेज का निधान

(५)

अग्ने जातान् प्र णुदा मे सपत्नान् प्रत्यजातान् जातवेदो नुदस्व ।
अधस्पदं कृणुष्व ये पृतन्यवोऽनागसस्ते वयमदितये स्याम ।।

अथर्व० ७.३४.१

ईर्ष्याग्रस्त घातक सपत्न जोकि विद्यमान
अग्नि अग्रणी, भगादे उन्हें दूर मार कर
बीज-नाश उनका हो, जोकि अभी पैदा होंगे
युद्धरत शत्रुसंघ को कुचल हो प्रखर
पाप दोषहीन हम रहें दिव्यभाव पूर्ण
पूर्णतः स्वतन्त्र; हमें दे तू विजय का वर
सौजन्य, विवेक, श्रम—तीन जहां रहते हैं
वहां अदिति के पुत्र रहते बनाके घर

(६)

यथा देवा असुरान् प्राणुदन्त यथेन्द्रो दस्यूनधमं तमो बबाधे ।
तथा त्वं काम मम ये सपत्नास्तानस्माल्लोकात् प्र णुदस्व दूरम् ॥

अथर्व० ९.२.१८

जैसे देव स्वार्थरत असुरों को दें खदेड़
जैसे इन्द्र दस्युओं को तम में धकेल दे
ऐसे मेरे सुदृढ़ संकल्प, इस लोक से तू
ईर्ष्याग्रस्त घातकों को मार दूर ठेल दे

द्विट् (द्वेषी)–बुरा चाहने वाला

द्विषो नो विश्वतोमुखाति नावेव पारय ।
अप नः शोशुचदघम् ॥

ऋ० १.९७.७

अग्नि अग्रणी, है तेरी सब ओर मुक्त गति
नाव बन द्वेषियों के नद से लगा दे पार
दुष्ट बुरा चाहते ये द्वेषी ज्वालाओं में जलें
रुके न हमारी गति, अनिश होवे विस्तार

(२)

पवस्वेन्दो वृषा सुतः कृधी नो यशसे जने ।
विश्वा अप द्विषो जहि ॥

ऋ० ९.६१.२८

पूर्ण इन्दु के समान शीतल आनन्दमय
प्रभु, रसधाराएं तू भू पै बरसाता है
बरस बरस देव, नहला दे रस से तू
मैं तो चेतन हूं, जड़ में भी प्राण आता है
ऐसा दिव्य भव्य बनूं, यश जन जन में हो
मनुज महान् यश से ही कहलाता है
मैं हूं विश्वप्रेमी, मेरा बुरा चाहते जो द्वेषी
प्रभु, उन पर तेरा वज्र घहराता है

(३)

अव यत् स्वे सधस्थे देवानां दुर्मतीरीक्षे ।
राजन्नप द्विषः सेध मीढ्वो अप स्त्रिधः सेध ॥

ऋ० ८.७९.९

मेरा मानव-शरीर देवों का सुमन्दिर है
अग्नि, इन्द्र, सूर्य आदि सब हैं विराजमान
पिण्ड है ब्रह्माण्ड का ही लघु रूप पूर्ण भव्य
आत्मा-परमात्मा का है दिव्य यह वास-स्थान
रसनिधि सोम प्रभु, बरसाओ ऐसा रस
जीवन-कान्तार शुष्क बने सुमन उद्यान
मैं हूं विश्वप्रेमी, मेरा बुरा चाहते जो द्वेषी
उन हिंसकों को नष्ट कर, रहे न निशान

(४)

विश्वा उत त्वया वयं धारा उदन्या इव ।
अति गाहेमहि द्विषः ॥

ऋ० २.७.३

अग्नि अग्रणी हे ईश, मैं हूं कर्मशील नर
बढ़ते हैं पांव, पाणि कर्म करते महान्
मुझे नहीं कोई भय, मेरी सदा होगी जय
सत्य का तू रक्षक है, ज्ञानी पूर्ण शक्तिमान्
भीषण समुद्र, उठा रहे हैं तूफान द्वेषी
मेरे पास दिव्य नाव, भय का नहीं निशान
चप्पू मेरे हाथ में है, सिर उठा खेता हूं मैं
बन के प्रकाशस्तम्भ स्थित तू है हर स्थान

(५)

यो विश्वाभिपश्यति भुवना सं च पश्यति ।
स नः पर्षदति द्विषः ।।

अथर्व० ६.३४.४

अग्नि अग्रणी हे ईश, निर्भय हो बढ़ता हूं
लेके सत्य-नौका चप्पू कर्म के चलाता हूं
भीषण समुद्र, द्वेषी उठा रहे हैं तूफान
तू प्रकाशस्तम्भ; देख नौका मैं बढ़ाता हूं
कहां क्या है, देखता तू विवेचन सूक्ष्म कर
कितना भी छोटा हूं मैं, प्यार तेरा पाता हूं
तेरी एक दृष्टि में समाता सारा त्रिभुवन
रख श्रद्धा, दुर्जनों को रौंद बढ़ जाता हूं

(६)

उदेहि वेदि प्रजया वर्धयैनां नुदस्व रक्षः प्रतरं धेह्येनाम् ।
श्रिया समानानति सर्वान्त्स्यामाधस्पदं द्विषतस्पादयामि ।।

अथर्व० ११.१.२१

जीवन के यज्ञ में है बुद्धि की बनाई वेदि
मेरे अग्नि प्रभु, इसमें तेरा होवे उदय
प्रजनन नव ज्ञान का हो यहां क्षण क्षण
दुष्ट पाप-भावना का होवे सभी भाँति क्षय
प्रभु, तेरा पुत्र यह कर्म शील खड़ा नर
इसे पथ दिखलाके बढ़ा, हो जय-विजय
श्री में स्वसमान लोगों में मैं आगे बढ़ जाऊं
द्वेषियों को पांवों तले रौंदूं हो विगतभय

(७)

यावन्तो मा सपत्नानामायन्तं प्रतिपश्यथ ।
उद्यन्त्सूर्य इव सुप्तानां द्विषतां वर्च आ ददे ॥

अथर्व० ७.१३.२

हे ईर्ष्यालु घातक सपत्नो, तुम में से जो हैं
डालते बुरी नज़र, चूर वे हो जाएंगे
जैसे सूर्य सोते लोगों का, मैं द्वेषियों का वैसे
तेज हर लेता; सभी मुँह की वे खाएंगे

अमित्र

(स्नेहभाव से रहित)

त्वामुग्रमवसे चर्षणीसहं राजन् देवेषु हूमहे ।
विश्वा सु नो विथुरा पिब्दना वसोऽमित्रान्त्सुषहान् कृधि ॥

ऋ० ६.४६.६

हे राजन् इन्द्र, श्रेष्ठ शक्तिशाली देवों में तू
सभी मानवों पै तेरा शासन है चलता
रक्षण, सहायता के लिए तुझे ही पुकारें
सुजन, सुमति, कर्मठों पै तेरी ममता
दुर्बलताएं, त्रुटियां दूर कर देता सारी
हारें शत्रु, हमको दे ऐसी तू सबलता
ईर्ष्याग्रस्त, स्वार्थी बनते हमारे जो अमित्र
सिर न उठाने पायें, दे बल, कुशलता

(२)

अप प्राच इन्द्र विश्वाँ अमित्रानपापाचो अभिभूते नुदस्व ।
अपोदीचो अप शूराधराच उरौ यथा तव शर्मन् मदेम ॥

ऋ० १०.१३१.१

ईर्ष्याग्रस्त स्वार्थी जन बनते अमित्र जो कि
इन्द्र उन पापियों को मारके भगा दे दूर
आगे पीछे दाएं बाएं घेरे हमें महानीच
पापार्जित धनराशि का है उनको ग़रूर
हम तेरे आश्रय में फलें फूलें मस्त रहें
सर्व प्राणियों के हित के नशे में हुए चूर
अमित्रों का अभिभव करे दिव्य बली इन्द्र
सिर ही उठाते उन्हें करदे चकनाचूर

(३)

उदग्ने तिष्ठ प्रत्या तनुष्व न्यमित्राँ ओषतात्तिग्महेते ।
यो नो अरातिं समिधान चक्रे नीचा तं धक्ष्यतसं न शुष्कम् ॥

ऋ० ४.४.४

दिव्य अग्नि अग्रणी, तू जगा निज दीप्त ज्वाला
तेरा भव्य रूप मेरे सन्मुख होवे साकार
कर में ले तीक्ष्ण आयुधों को भस्मसात् कर
अमित्रों को, स्वार्थग्रस्त जिनके हैं व्यवहार
वे अराति संग्रही अदानशील क्षुद्र नीच
भली भाँति दीप्त अग्नि कर उनका संहार
जैसे सूखी लकड़ियां तड़ तड़ जलती हैं
वैसे उन्हें भस्मसात् कर तू सभी प्रकार

इन्द्र का सखा

सख्ये त इन्द्र वाजिनो मा भेम शवसस्पते ।।

ऋ० १.११.२

इन्द्र आत्मा, इन्द्र प्रभु, इन्द्र राष्ट्र सेनापति
बना सखा तू सशक्त, होवे दूर भय-मति

अग्नि का सखा

अग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ।

ऋ० १.९४.२

अग्नि अग्रणी ईश और
संकल्प मनस् के मेरे
होते कभी नहीं हिंसित जब
बन गए सखा हम तेरे

विजयी–पाप–रहित

अजैष्मासनामाद्याभूमानागसो वयम् ।

अथर्व० १६.६.१

हुए आज हम विजयी, हमने
पा प्राप्तव्य लिया अपना
पापरहित हम हुए, बना यह
जीवन मधु रसमय सपना

वृत्र

(अन्दर और बाहर के)

घ्नन्तो वृत्राण्युभयानि शूर राया मदे ।

ऋ० ६.१९.३

कामादि वृत्र उर के अन्दर
वृत्र राष्ट्र में स्वार्थ-निरत जन
करके दोनों का वध सुख-संपद्
से युक्त रहें हम भगवन्

हम मायावी न बनें

अद्या मुरीय यदि यातुधानो अस्मि
यदि वायुस्ततप पूरुषस्य ।।

ऋ० ७.१०४.५
अथर्व० ८.४.१५

छलकपट किसी से करूं अगर
किसी पुरुष के प्राण तपाऊं
रहूं न क्षणभर भी मैं जीवित
प्रभो, आज ही मैं मर जाऊं

देवयान

स्वस्ति तेऽस्मिन् पथि देवयाने भूयात् ।।

यजुः० ५.३३

चलते हैं जिस मार्ग पर ऋषि मुनि देव सुजान
उस पर ही हम सब चलें; हो स्वस्ति भला भगवान

शत्रुनाशक इन्द्र

त्वमिन्द्र प्रतूर्तिष्वभि विश्वा असि स्पृधः ।
अशस्तिहा जनिता विश्वतूरसि त्वं तूर्य तरुष्यतः ।।

ऋ० ८.९९.५; यजुः० ३३.६६
साम १६३९; अथर्व० २०.१०५.१

तूर्य है तू इन्द्र, शत्रुओं का कर देता नाश
युद्धों में न कोई कर सकता मुकाबला
सबका तू अभिभव कर देता क्षण में है
अमङ्गल, अपयश दूर करता चला
पिता है तू; बाधा पहुंचाते सज्जनों को जो हैं
घोंट देता पकड़के देव उनका गला
सौजन्य, विवेक, श्रम लेकर जो बढ़ता है
होता वही वन्दित है, होता उसका भला

पापी शासक न हो

मा किर्नो अघशंस ईशत ।

ऋ० ६.७१.३

जिसके मन में पाप बसा है
जग में ऐसा कोई भी जन
बने न शासक कभी हमारा
नष्ट करें उसको हम भगवन्

बृहस्पति

(ज्ञान-महिमा)

सुनीतिभिर्नयसि ।

ऋ० १.१९०.४

महाज्ञान के पति हे भगवन्
तू उत्तम पथ दिखलाता है
देव बृहस्पति, उस पथ पर चल
मानव पद-पद सुख पाता है

(२)

ब्रह्मद्विषस्तपनः ।

ऋ० १.१९०.४

देव बृहस्पति, महाज्ञानपति,
जिसे ज्ञान से प्रीति नहीं है
उसे तपाता है तू, उसको
मिलती शान्ति न कभी कहीं है

बुरा चाहने वाले का सर्वनाश हो

निर्द्विषन्तं दिवो निः पृथिव्या निरन्तरिक्षाद् भजाम ।

अथर्व० १६.६.१

जिसके मन में द्वेष भरा है, जन जन से जिसको प्यार नहीं
इस त्रिभुवन में रहने का है उसे कहीं भी अधिकार नहीं
पृथ्वी, अन्तरिक्ष द्युलोक में, भाग कहीं भी जाए दूर
उसे कहीं भी मत रहने दो, नाश योग्य है वह जन क्रूर

राक्षसों का नाश हो

यो नः कश्चिद् रिरिक्षति रक्षस्त्वेन मर्त्यः ।
स्वैः ष एवै रिरिषोष्ट युर्जनः ।।

ऋ. ८.१२.१३

भावनाएं राक्षसी ले मर्त्य जो लगाता घात
छल कपट से भरी बनाता योजनाएं
निज पांव पै कुल्हाड़ा मारता है स्वयं मूर्ख
नष्ट कर देंगी उसकी ही उसे चेष्टाएं

दानवृत्ति की विजय

सिषासन्तो जिगीवांसः स्याम ।

ऋ० ५.६२.६

बसी दान की वृत्ति हमारे उर में है भगवान्
हर पद हर क्षण विजय हमारी, प्रेम भरे हैं प्राण

दुरितों को पार करें

अपो न नावा दुरिता तरेम ।

ऋ० ७.६५.३

तूफानी समुद्र में ज्यों नौका ले जाती पार
वैसे सब दोषों से पार करे प्रभु ईश उदार

इन्द्र का वज्र

प्रेह्यभीहि धृष्णुहि न ते वज्रो नि यंसते ।
इन्द्र नृम्णं हि ते शवो हनो वृत्रं जया अपोऽर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥

ऋ० १.८०.३

इन्द्र आत्मा, इन्द्र प्रभु, इन्द्र राष्ट्र-सेनापति
करदे स्वराज्य की तू जगत् में घोषणा
आगे बढ़, सब ओर बढ़, सब शत्रुओं की
निज महाशक्ति से तू वीर कर धर्षणा
तेरा दिव्य वज्र चले, टुकड़े हों गिरे शत्रु
संभव न तेरे वज्रपात को है रोकना
नेता, तेरा बल दिव्य, मार डाल वृत्र को तू
तेरी व्याप्ति, तेरा कर्म करे रस-वर्षणा

दुर्गम पथ सुगम कर

दुर्गं चिन्नः सुगं कृधि ।

ऋ० ८.९३.१०

आत्मन् इन्द्र धर्म-पथ दुर्गम, दे हमको बल
साहस करके बढ़ें, न मन में हो कोई छल

दुर्गम पथ को पार करा

विश्वानि दुर्गा पिपृतं तिरो नः ।

ऋ० ७.६०.१२

दिव्य शक्तियो, सत्य, धर्म का पथ है दुर्गम
हमें शक्ति दो साहस दो तुम, पार करें हम

अदान भावना न हो

मान्तः स्थुर्नो अरातयः ।

ऋ० १०.५७.१

ठहरें नहीं अदान-भावनाएं अन्तर के अन्दर
और अदानी जन समाज में रहें न क्षण भी प्रभुवर

न्याय्य पथ न छोड़ें

मा प्र गाम पथो वयम् ।

ऋ. १०.५७.१

वह प्रभु हमको ज्योति दिखाए
पथ से इधर उधर मत जाएं

आक्रान्ताओं का मुकाबला करें

अभि ष्याम पृतन्यतः ।

ऋ० २.८.६

संगठन कर आक्रमण करें पापी जन
उनका करेंगे हम अभिभव प्रतिक्षण

इन्द्र का स्व-राज्य हो

इन्द्र तुभ्यमिदद्रिवोऽनुत्तं वज्रिन् वीर्यम् ।
यद्ध त्यं मायिनं मृगं तमु त्वं मायया वधीरर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥

ऋ० १.८०.७

इन्द्र आत्मा, इन्द्र प्रभु, इन्द्र राष्ट्र—सेनापति
तेरी एक फूंक से ये उड़ते पहाड़ हैं
तेरे हाथ में है वज्र, तेरा वीर्य है अजेय
मायी कपटी पै तेरी भयङ्कर मार है
कपटी है मूढ़ पशु, जानता नहीं है वह
तेरी माया है अनन्त, उसका न पार है
करदे स्वराज्य की तू घोषणा अमर देव
सौजन्य, विवेक, श्रम जीवन का सार है

इन्द्र का जाल

बृहद्धि जालं बृहतः शक्रस्य वाजिनीवतः ।
तेन शत्रूनभि सर्वान् न्युब्ज यथा न मुच्यातै कतमश्चनैषाम् ॥

अथर्व० ८.८.६

इन्द्र महाशक्तिमान्, बलयुक्त हैं क्रियाएं
उसका है बड़ा जाल, जिसका न पार है
लेके वह जाल शत्रुओं पै टूट पड़ नर
प्रभुता तो तेरा जन्म-सिद्ध अधिकार है
एक एक दुष्ट फँसे, शत्रु कोई नहीं बचे
प्रतिपल युद्ध विश्व-लीला का आधार है
ईश्वर की सर्वोत्तम कृति नर, उठ जाग
करते सितारे तेरी जयजयकार हैं

दुर्मति का नाश हो

अप भूतु दुर्मतिर्विश्वा अप भूतु दुर्मतिः ।

ऋ० १.१३१.७

मति बुरी दूर होवे, होवे दूर बुरी मति
रहें दूर दुर्जनों से, होवे नित्य पुण्य-रति

हिंसक का नाश हो

यो नः स्वोऽरणो यश्च निष्ठ्यो जिघांसति ।
देवास्तं सर्वे धूर्वन्तु ब्रह्म वर्म ममान्तरं शर्म वर्म ममान्तरम् ॥

साम० उ० २२-८-३ (१८७२)

बन्धु-बान्धव, पराये तथा कितने सुगुप्त
स्वार्थी पापी नीच दुष्ट फैलाते कपट-पाश
सज्जनों के अहित में लगे; सब देव करें
उनका विनाश; होवे सत्य धर्म का प्रकाश
पहन कवच ब्रह्म का सदैव रक्षित हूं मैं
करे सदा मेरी रक्षा ब्रह्म का लीला-विलास
पहन के कवच शक्ति, शान्ति का सुरक्षित मैं
सौजन्य, विवेक, श्रम जहां, ब्रह्म सदा पास

(२)

धूरसि धूर्व धूर्वन्तम्

यजुः १-८

जगत् में सज्जनों के नाश में लगे जो जन
दुष्ट-विनाशक प्रभु, कर उनका दलन

आत्मा की शक्ति

मह्यं नमन्तां प्रदिशश्चतस्त्रः ।

अथर्व० ५-३-१

फैली चारों दूर दिशाएं
मेरे संमुख सीस झुकाएं

इन्द्र अजेय है

न कोमिन्द्रो विकर्तवे न शक्रः परिशक्तवे ।
विश्वं शृणोति पश्यति ।।

ऋ० ८.७८.५

इन्द्र आत्मा, इन्द्र प्रभु, इन्द्र राष्ट्र-सेनापति,
किसकी है शक्ति, कर सके इसकी जो काट
शक्र, महा शक्तिशाली, संभव न अभिभव
यह सब कुछ देखता औ' सुनता सम्राट

अभय

यत इन्द्र भयामहे ततो नो अभयं कृधि ।

ऋ० ८.६१.१३

पिण्ड के जीवात्मा इन्द्र जाग जाग जाग जाग
ब्रह्मण्ड के इन्द्र प्रभु रह सदा मेरे पास
जहां कहीं भय हो तू हमको बना अभय
पाके तेरी दिव्य शक्ति होवे जीवन-विलास
इन्द्र आत्मा, इन्द्र प्रभु इन्द्र राष्ट्र-सेनापति
रक्षक हो देव, रह सदा ही हमारे पास
जहां कहीं भय हो, तू हमको बना अभय
पाके तेरी दिव्य शक्ति होवे जीवन-विलास

अभयं नः करत्यन्तरिक्षमभयं द्यावापृथिवी उभे इमे ।
अभयं पश्चादभयं पुरस्तादुत्तरादधरादभयं नो अस्तु ॥

अथर्व० १६.१५.५

विस्तीर्ण अन्तरिक्ष में अभय ही अभय हो
पृथ्वी पै अभय, तारे अभय-सन्देश दें
पीछे आगे ऊपर औ' नीचे सर्वत्र अभय
हर पद दे विजय हर क्षण गीत दे
विस्तीर्ण अन्तरिक्ष में अभय ही अभय हो
पृथ्वी पै अभय, तारे अभय का गीत दें
पीछे आगे, ऊपर औ' नीचे सर्वत्र अभय
हर पद दे अभय हर क्षण जीत दे

अभयं मित्रादभयममित्रादभयं ज्ञातादभयं पुरो यः ।
अभयं नक्तमभयं दिवा नः सर्वा आशा मम मित्रं भवन्तु ॥

अथर्व० १६.१५.६

मित्र से अभय और अभय अमित्र से हो
ज्ञात से अभय और भावी से अभय हो
रात्रि में अभय और दिन में अभय नित्य
सब दिशाएं बनें ये मित्र, जय जय हो

इन्द्र आशाभ्यस्परि सर्वाभ्यो अभयं करत् ।
जेता शत्रून् विचर्षणिः ॥

अथर्व० २०.५७.१०

इन्द्र आतमा इन्द्र प्रभु इन्द्र राष्ट्र-सेनापति
दिशा दिशा में अभय-गीत लहराते हैं
इन्द्र की है दिव्य दृष्टि, इन्द्र शत्रु जेता वीर
इन्द्र के उपासक अभय, जय पाते हैं

इन्द्र को जगाओ

येषामिन्द्रस्ते जयन्ति ।

ऋ० ८.१६.५

इन्द्र आत्मा, इन्द्र प्रभु, इन्द्र राष्ट्र-सेनापति
तीनों इन्द्र जहां नित्य रहते हैं विद्यमान
पद पद पै सफल जाते सदा बढ़ते वे
उनके विजय घोष से गूंजता आसमान

समाज विरोधी-नष्ट हों

यमु द्विष्मस्तमु प्राणो जहातु ।

ऋ० ३.५३.२१

हम विश्वप्रेमी, विश्वद्वेषी नीच दुष्ट जन
नष्ट होवें कांटे, खिला रहे विश्व-उपवन

इन्द्र सुख देने वाला है

एष इन्द्रो वरिवस्कृत् ।

ऋ० ८.१६.६

आत्मा, प्रभु, सेनापति—इन्द्र जहां विद्यमान
है विस्तार वहां, वहां सुख शान्ति का विधान

वीर बनें

सुवीर्यस्य पतयः स्याम ।

अथर्व० ७.६१.६६

महावीर-कर्मों में हो रति
हे प्रभु, हों सुवीर्य के हम पति

द्वेष न रखें

इदमुच्छ्रेयोऽवसानमागां शिवे मे द्यावापृथिवी अभूताम् ।
असपत्नाः प्रदिशो मे भवन्तु न वै त्वा द्विष्मो अभयं नो अस्तु ॥

अथर्व० १९.१४.१

बीत गए दिन जब किया करता था द्वेष
कितने ही मैंने शत्रु हाय, थे बना लिए
आ गई समझ, अब, विश्व-प्रेम-दीक्षित हूं
सभी दिशाओं में प्रेम-बाहु हैं बढ़ा लिए
बन्धु श्रेयस् इसी में, द्वेष को समाप्त किया
भू-गगन हैं मगन, शिव-गीत गा लिए
हमें तुझसे न द्वेष, आओ गले मिलें बन्धु
मैंने तूने सभी ने अभय-वर पा लिए

शक्तिशाली शिव

अवततधन्वा पिनाकावसः कृत्तिवासा अहिंसन्नः शिवोऽतीहि।

युजः० ३.६१

प्रभु, तेरा नाम शिव करता है मंगल तू
हिंसा नहीं, प्रेम तेरा रूप है, स्वभाव है
किन्तु पापियों के लिए तूने है धनुष ताना
उन्हें पीस डालता तू, अधृष्य प्रभाव है
तेरा कवच अभेद्य, कृत्तिवासा प्रभु, शर
पापियों के टूट गिरें, लगता न घाव है
दुर्जनों के लिए तेरा धनुष है उठा हुआ
सज्जनों पै सदा तेरी प्रेम भरी छाँव है

मंगलमय शिव

यामिषुं गिरिशन्त हस्ते बिभर्ष्यस्तवे ।
शिवां गिरित्र तां कुरु मा हिंसीः पुरुषं जगत् ।।

यजुः० १६.३

प्रभु, तू है गिरिशन्त मेघ-रस-शान्ति धाम
उस वाणी में है शक्ति, जहां तेरा है निवास
सबको तू शान्ति देता, सुख-सिन्धु बरसाता
प्रबुद्ध सरस्वती करती तेरा है प्रकाश
पापी असुरों के हित हाथ में उठाता बाण
उनके विनाश से ही होता सृष्टि का विकास
सौजन्य, विवेक, श्रम, लिये हम चलते हैं
मिले हमें तेरी रक्षा, घनानन्द चिद्विलास

सर्वत्र विजय हो

इतो जयेतो वि जय सं जय जय स्वाहा ।

अथर्व० ८.८.२४

पद पद यहां विघ्न-बाधाएं हैं घेरे हुए
इधर से विघ्न आया नर बढ़, जय हो
उधर से विघ्न आया बढ़ जूझ हो विजय
जय पूर्णतः जय; तू विजय संजय हो

संग्रह और दान

प्राणापानौ मृत्योर्मा पातं स्वाहा ।

अथर्व० २.१६.१

ग्रहण के साथ त्याग जहां वहां महासुख
बसती है वहां शक्ति, रहता न कोई दुख

विश्वम्भर प्रभु

विश्वम्भर विश्वेन भरसा पाहि स्वाहा ।

अथर्व० २.१६.५.

सौजन्य, विवेक श्रम लिये मैं निश्चिन्त नित
विश्वम्भर भरण करेगा, यह है निश्चित

बड़े बूढ़ों से सीखें

अवन्तु नः पितरः सुप्रवाचनाः ।

ऋ० १.१०६.३.

जो मनीषी बड़े बूढ़े देते हैं सत्यपरामर्श
जब शंका सन्देह हो, बनाएं उन्हें आदर्श

अच्युतच्युत् इन्द्र

यो अच्युतच्युत् स जनास इन्द्रः ।

अथर्व० २०.३४.६.

इन्द्र आत्मा, इन्द्र प्रभु, इन्द्र राष्ट्र-सेनापति
नर, इनका प्रताप विश्व को कंपाता है
ध्यान इन पै लगा तू, बड़े बड़े अच्युतों को
गिरा देता इन्द्र शक्तिमान् है विधाता है

प्रकृति में परमात्मा मूर्त है

अवन्तु मामुषसो जायमाना अवन्तु मा सिन्धवः पिन्वमानाः।
अवन्तु मा पर्वतासो ध्रुवासोऽवन्तु मा पितरो हवेषु ॥

ऋ० ६.५.२४

प्रकृति की लीलाओं में लेता जो मनुष्य रस
उसके कलुष, ताप दूर भग जाते हैं
नित्य मुसकराती उषा दमकती पूर्व में है
नदी, नद, सर, सिन्धु मस्त लहराते हैं
ऊंचे ऊंचे अडिग हैं पर्वत सुदृढ़ खड़े
सब उस प्रभु की ही महिमा को गाते हैं
जग-हितकारी ऋषि, मुनि, योगी, वीर नर
सज्जनों की रक्षा हित दौड़ कर आते हैं

पापवृत्ति वाले का नाश हो

योऽस्माँश्चक्षुषा मनसा चित्त्याकूत्या च योऽघायुरभिदासात् ।
त्वं तानग्ने मेन्यामेनीन् कृणु स्वाहा ॥

अथर्व ५-६-१०

दृष्टि, मन, बुद्धि और संकल्प के द्वारा दुष्ट
पापमय मति लेके हमको सताता है
षड्यन्त्र कर हमको बनाता दास है जो
पर-अहित का जाल जग में फैलाता है
मेरे दिव्य सकल्प हे, अग्नि अग्रणी प्रभु हे
मार अस्त्र उनको निरस्त्र तू बनाता है
सौजन्य, विवेक, श्रम जहां, वहां सारे देव;
पद पद स्वाहा-ध्वनि-स्वर लहराता है

पापी भस्म हो जाएं

त्वं तं देव जिह्वया बाधस्व दुष्कृतम् ।
मर्तो यो नो जिघांसति ।

ऋ० ६-१६-३२

हे मेरे संकल्प अग्नि, अग्नि अग्रणी प्रभु हे
दुष्ट पापाचारी को जला दें तेरी ज्वालाएं
हम सत्यमार्गगामी, हमको जो मारने को
आए, उसे नष्ट करें तेरी सुयोजनाएं

मानव के छः शत्रु

उलूकयातुं शुशुलूकयातुं जहि श्वयातुमुत कोकयातुम् ।
सुपर्णयातुमुत गृध्रयातुं दृषदेव प्र मृण रक्ष इन्द्र ।।

अथर्व० ८-४-२२

मोह, क्रोध, ईर्ष्या, काम, मद, लोभ—छः हैं शत्रु
उल्लू, भेड़िया, कुक्कुर, कोक, बाज, गीध—जान
इन्द्र, इनको पकड़ कुचल दे पूर्णतया
जैसे पत्थर से पीसें इनमें रहे न जान

रात्री सूक्त

(दुर्गा की आरती)

आ रात्रि पार्थिवं रजः पितुरप्रायि धामभिः ।
दिवः सदांसि बृहती वि तिष्ठस आ त्वेषं वर्तते तमः ।।
ये ते रात्रि नृचक्षसो युक्तासो नवतिर्नव ।
अशीतिः संत्वष्टा उतो ते सप्त सप्ततिः ।।२।।

रात्रीं प्र पद्ये जननीं सर्वभूतनिवेशनीम् ।
भद्रां भगवतीं कृष्णां विश्वस्य जगतो निशाम् ।।३।।

संवेशनीं संयमनीं ग्रहनक्षत्रमालिनीम् ।
प्रपन्नोऽहं शिवां रात्रीं भद्रे पारमशीमहि भद्रे पारमशीमह्यों नमः ।।४।।

स्तोष्यामि प्रयतो देवीं शरण्यां बह्वृचप्रियाम् ।
सहस्रसंमितां दुर्गां जातवेदसे सुनवाम सोमम् ।।५।।

शान्त्यर्थं तद् द्विजातीनामृषिभिः सोमपाश्रिताः ।
ऋग्वेदे त्वं समुत्पन्नारातीयतो नि दहाति वेदः ।।६।।

ये त्वां देवि प्रपद्यन्ति ब्राह्मणा हव्यवाहनीम् ।
अविद्या वहुविद्या वा सा नः पर्षदति दुर्गाणि विश्वा ।।७।।

अग्निवर्णां शुभां सौम्यां कीर्तयिष्यन्ति ये द्विजाः ।
तां तारयति दुर्गाणि नावेव सिन्धुं दुरितात्यग्निः ।।८।।

दुर्गेषु विषमे घोरे संग्रामे रिपुसंकटे ।
अग्निचोरनिपातेषु सर्वग्रहनिवारिणि सर्वग्रहनिवारिण्यों नमः ।।९।।

दुर्गेषु विषमेषु त्वं संग्रामेषु वनेषु च ।
मोहयित्वा प्र पद्यन्ते तेषां मे अभयं कृणु तेषां मे अभयं कृण्वों नमः ।१०

केशिनीं सर्वभूतानां पञ्चमीति च नाम च ।
सा मां समा निशा देवी सर्वतः परि रक्षतु सर्वतः परि रक्षत्वों नमः ।११

तामग्निवर्णां तपसा ज्वलन्तीं वैरोचनीं कर्मफलेषु जुष्टाम् ।
दुर्गां देवीं शरणमहं प्र पद्ये सुतरसि तरसे नमः सुतरसि तरसे नमः ।१२

दुर्गा दुर्गेषु स्थानेषु शं नो देवीरभिष्टये ।
य इमं दुर्गास्तवं पुण्यं रात्रौरात्रौ सदा पठेत् ।।१३।।

रात्रिः कुशिकः सौभरो रात्रिस्तवो गायत्री ।
रात्रीसूक्तं जपेन्नित्यं तत्काल उप पद्यते ।।१४।।

रात्री सूक्त

(दुर्गा आरती)

जय कृष्णे जय रात्रि मनोज्ञे, जय हो तेरी दुर्गे माता।

रात्रि आ गई, भू से नभ तक भीषण तम है छाया
इसके पिता सूर्य का है इसमें द्युति तेज समाया
नभ में तारों के घर में भी बृहत् रात्रि है छाई।
घूम रहा सब ओर दीप्त तम, रस की मधु-धारा बरसाता

जय कृष्णे..............॥१॥

जुते रात्रि, हैं नब्बे और नौ घोड़े तेरे रथ में
अस्सी और आठ घोड़े ले जाते तुझको पथ में
कभी सतत्तर घोड़ों वाले रथ पर तू चढ़ती है
ये तारे घोड़े, गण कोई भी तेरे रथ में जुत जाता

जय कृष्णे..........॥२॥

शरण रात्रि माता है मेरी, उसकी गोदी प्यारी
सभी प्राणियों को देती विश्राम महासुखकारी
यह भद्रा भगवती सभी के हित आकर्षक कृष्ण
इसका प्रेमिल स्पर्श सकल जग को है मधुमय सूक्ष्म बनाता

जय कृष्णे..........॥३॥

देती सबको विश्राम, सभी का नियमन करती है
ग्रह-नक्षत्रों की माला यह ग्रीवा में धरती है
मैं शिवा रात्रि की शरण पड़ा, भद्रे, पहुंचें पार
भद्रे हम पहुंचें पार ओं नमः यह मन्त्र सरस मदमाता

जय कृष्णे..........।।४।।

रात्रि शरण देती, स्तुति में रत हूंगा हो मैं संयत
वेद-ऋचाओं के बहुपाठी विज्ञों को यह अभिमत
यह दुर्गा है, इसके गुणगण दिव्य हजारों जग में
करें जातवेदा ज्ञानी के हित हम सोम-सवन सुखदाता

जय कृष्णे..........।।५।।

हे दुर्गे, हे रात्रि, सोम का हम करते पान
किया द्विजों के हित ऋषियों ने है तेरा नि[illegible]ण
जन्म ऋचाओं में है तेरा, तू ज्ञान जगाती है
वेद अदानशील लोगों को पद-पद पर है यहां ज[illegible]ता

जय कृष्णे..........।।६।।

देवि, हव्यवाहनी तू है, ब्राह्मण तव शरणागत
हों अविद्य या बहुविद्य सभी रहते तुझ पर आश्रित
पद पद पर दुर्गम पथ पर हम आगे बढ़ते जाते
हमको तेरा पथदर्शन ही दुर्गे, जग में पार लगाता

जय कृष्णे..........।।७।।

इस शुभ सौम्य अग्नि वर्णा के जो द्विज गाएं गान
दुर्गम मार्गों पर करते वे ले उत्साह प्रयाण
अग्निरूप वह कर देती दुरितों से उनको पार
जैसे नाविक नौका से है पार सिन्धु, सरि के पहुंचाता
जय कृष्णे..........।८।

दुर्गम घोर विषम पथ हो या रिपुओं से सग्राम
आग, चोर का भय हो, बढ़ते हम ले तेरा नाम
हमको तू सब अशुभ जाल से हे देवी, बचाती है
सर्वग्रहनिवारिणि ओं नमः मन्त्र जपता हूं मैं, सुख पाता
जय कृष्णे..........।९।

दुर्गम विषम भयङ्कर संग्रामों में और वनों में
जो हमको छल से बस करते ले अघ-भाव मनों में
उन सबसे तू हमें अभय कर मति और शक्ति तू दे
कर हमको अभय 'ओं नमः' का मन्त्र हमारे मन को भाता
जय कृष्णे..........।१०।

सभी प्राणियों को सुख देती, नाम पञ्चमी इसका
इसको सब से प्रेम, ध्यान रखती है इसका उसका
इसका है सम भाव सभी पर देवी निशा मनोहर
वह मेरी रक्षा करे सर्वतः 'ओं नमः' मन्त्र सबका है त्राता
जय कृष्णे..........।११।

तप से संदीप्त अग्निवर्णा यह खूब दमकती है
कर्मशील लोगों को फल दे यह झोली भरती है
इस दुर्गा देवी की शरण प्राप्त कर हूं आनन्दी
तेरा वेग महान्; वेग दे; मैं 'नमो नमः' कहना आता
जय कृष्णे..........।१२।

जीवन के पथ पर आती हैं शत दुर्गम बाधाएं
भर साहस हम करें आक्रमण, छिन्न-भिन्न हो जाएं
ईश-शक्ति दुर्गा कण कण में, जन जन की कल्याणी
जो हर रात्रि पढ़े दुर्गा-स्तव, वह अनुपम मति औ' बल पाता
जय कृष्णे..........।१३।

सबका सस्तक् भरण करे वह सुभर ईश विश्वभर
उसके गुण जो धरे कुशल हो कुशिक धन्य वह सौभर
रात्रि कुशिक सौभर है रात्रिस्तव रक्षक गायत्री
यह रात्रिस्तव नित्य जपे जो वह जन है तत्क्षण फल पाता
जय कृष्णे..........।१४।

शुद्धि-पत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१५	१७	ने	न
२०	१८	सभव	संभव
२२	१	अवस्रष्टा	अवसृष्टा
३०	५	छल का विधान	छल-विधान
३०	१५	विनाश हो	हो विनाश
३०	१७	प्रकाश हो	हो प्रकाश
३०	१९	विलास हो	हो विलास
३१	३	पद्य में साथ वाली प्रथम पंक्ति जोड़ लें	रण क्षेत्र में सदा मैं शत्रुंजय-वीर-संग
३८	५	किमीदिन	किमीदिनं
३९	१३	सिंह प्रतीको	सिंहप्रतीको
४०	२	आरे शत्रुं	आरेशत्रुं
४१	१२	जामींरजामीन्	जामी ँरजामीन्
५२	११	घटाओं	घटा
५३	२	कृष्वदा	कृण्वदा
५७	२	मीढ्वो	मीढ्‌वो
६३	९	देव	देव,
६३	१३	मा किर्नो	माकिर्नो
६६	१५	वषणा	वर्षणा
७०	६	कोमिन्द्रो	कीमिन्द्रो
७०	११	सम्राट	सम्राट्
७०	१४	ब्रह्मण्ड	ब्रह्माण्ड
७८	३	सयमनीं	संयमनीम्
७८	१६	कृष्ण	कृष्णा
८६	६	सग्राम	संग्राम
८२	६	सस्तक्	सम्यक्

विषय सूची

बन्धुबान्धवाशंसा

दिल्ली-नगर-वास्तव्योऽरोडवंशविभूषणः ।
सर्वभूतहितः श्रीमानभूत्स श्यामसुन्दरः ॥१॥

तस्यात्मजः श्रुतिप्रेमी मनोहरो **मनोहरः** ।
अभ्युदयेन संयुक्तो निःश्रेयसपरः सदा ॥२॥

मनोहरात्मजो धीरो **विवेकः** सत्यधर्मधीः ।
ब्राह्मण-भाव-संपन्नो लोके विजयतेतराम् ॥३॥

काङ्गड़ीतिप्रसिद्धस्य गुरुकुलस्य कार्यभाक् ।
आचार्यरामदेवोऽभूद् भल्लावंशविभूषणः ॥४॥

सत्यभूषणयोगी हि पुत्रस्तस्य श्रुतः कविः ।
तस्यात्मजा महोदारा **वन्दिता मधुहासिनी** ॥५॥

दिगृषिनिधिखाङ्केऽस्मिन् दिग्दृग्दिने शुभावहे ।
जूनमासे हि संध्यायां **परिणय**-क्षणोऽभवत् ॥६॥

परिणीता **विवेकेन वन्दिता मधुहासिनी** ।
विवेकं वन्दितं कृत्वा भूयान्नित्यविवेकिनी ॥७॥

मातामही विवेकस्य सुमतिर्हर्षवर्धिता ।
राजरानी च मातेयं भव्या सौम्या विराजते ॥८॥

स्वसाऽरुणा च भ्राता च **ससरोजो** हि **विक्रमः** ।
आवुत्तोऽयं **प्रमोदश्च** तथा **शालीनराहुलौ** ॥९॥

भागिनेयौ प्रमोदन्ते मङ्गलेऽस्मिन् मधुक्षणे ।
सर्वोऽपि परिवारोऽयं वर्धतां मोदतां सदा ॥१०॥

माता हि **वन्दितायाः** सा **राजरश्मिर्हि** स्वर्गता ।
माता **राजकुमारी** च स्वसारौ च **मनस्विनी** ॥११॥

उदया च तथा सर्वे बान्धवाः शुभकाङ्क्षिणः ।
व्यथिता हि वियोगेन सौभाग्येन च नन्दिताः ॥१२॥

विश्वम्भरस्य लीलायां सर्वभूतहिते रतौ ।
वर्धेतां दम्पती नित्यं प्रमोदेतां पदे पदे ॥१३॥

सत्यभूषणयोगी हि कविर्वेदपरायणः ।
वन्दितायाः पिता धन्यः कृतज्ञो नौति शंकरम् ॥१४॥

२४.६.७४

ओ३म्

सुमङ्गली प्रतरणी गृहाणां सुशेवा पत्ये श्वशुराय शंभूः ।
स्योना श्वश्र्वै प्र गृहान् विशेमान् ॥

अथर्ववेदः—१४.२.२६